# अदरक का स्वाद

## मानवता की कहानियों का रहस्य

तरुण लोहनी

कहानी का शीर्षक : अदरक का स्वाद
लेखक : तरुण लोहनी
प्रकाशन तिथि : 8 नवंबर 2019
प्रथम संस्करण

© 2019 Tarun Lohani
All Rights Reserved

लेखक की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक में सम्मिलित सामग्री के किसी अंश को, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता। ऐसा करना कॉपीराइट अधिनियम का उल्लंघन करना होगा।

# अदरक का स्वाद

तरुण लोहनी

हिंदी साहित्य के सभी लेखकों, कवियों, उपन्यासकारों और पाठकों को समर्पित।

# निवेदन

इस पुस्तक को पढ़ने का निर्णय लेने के लिए धन्यवाद। आशा है कि आपको यह कहानी पसंद आएगी।

एक कहानी लिखने से कई गुना अधिक कठिन होता है उसे पाठकों तक पहुँचाना। यदि आप हमारी सहायता करना चाहते हैं और ऐसे किन्ही लोगों को जानते हैं जिन्हें कहानियाँ पढ़ना पसंद है, तो कृपया उन्हें इस पुस्तक के बारे में अवश्य बताएँ और हमें अमेज़न (https://www.amazon.in/dp/B0816HPD3V) पर रीव्यू देना व रेट करना न भूलें।

# इस कहानी में कुल बारह अध्याय हैं:

अध्याय एक – निराला वन
अध्याय दो – राजनीतिक दलदल
अध्याय तीन – खोजी दल का गठन
अध्याय चार – आपसी मनमुटाव
अध्याय पाँच – नन्दन का सुझाव
अध्याय छः – सुन्दरनगर का इतिहास
अध्याय सात – कल्पना का निर्णय
अध्याय आठ – विचित्र वन की यात्रा
अध्याय नौ – चिन्तामणि जी की खोज
अध्याय दस – विचित्र जीवों का रहस्य
अध्याय ग्यारह – मानवता का कड़वा सच
अध्याय बारह – यात्रा की समाप्ति

# अस्वीकरण

इस कहानी के सभी घटनाएँ एवं पात्र काल्पनिक हैं और इनका किसी भी जीवित या मृत व्यक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि कहानी में ऐसी कोई समानताएँ पाई जाती हैं, तो वह मात्र एक संयोग होगा।

इस कहानी का उद्देश्य किसी की आस्था या राजनीतिक विचारधारा का विरोध करना या उसे ठेस पहुँचाना नहीं है। यदि आपको इस कहानी में कुछ भी आपत्तिजनक लगता है, तो लेखक उसके लिए आपसे क्षमा याचना करते हैं।

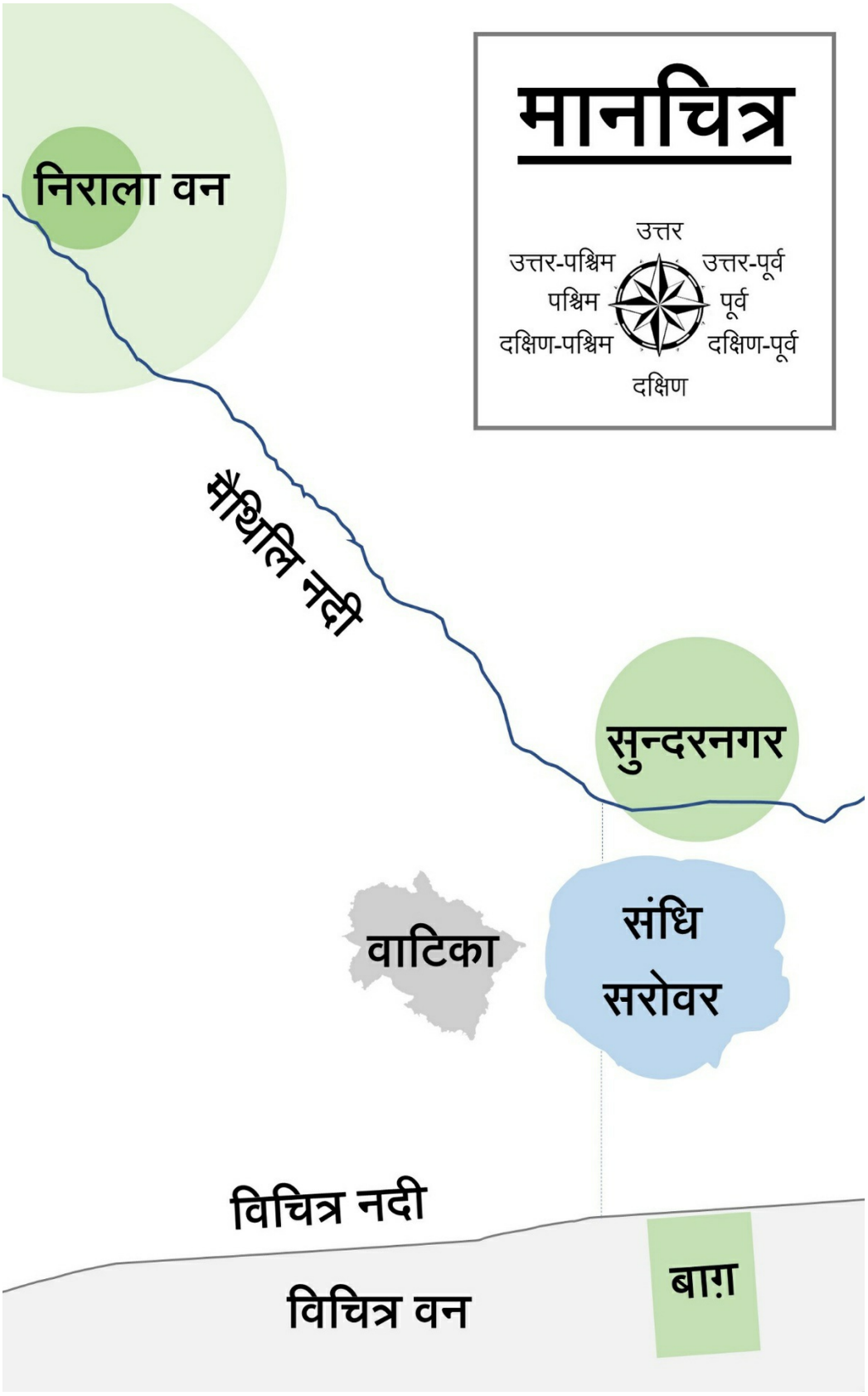
मानचित्र
उत्तर
उत्तर-पश्चिम
उत्तर-पूर्व
पश्चिम
पूर्व
दक्षिण-पश्चिम
दक्षिण-पूर्व
दक्षिण
निराला वन
मैथिलि नदी
सुन्दरनगर
वाटिका
संधि
सरोवर
विचित्र नदी
विचित्र वन
बाग़

# अध्याय एक – निराला वन

निराला वन के पशु-पक्षियों के जीवन में धर्म और आस्था का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस महाशक्ति ने इस संसार की रचना की, उसे मनुष्य कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि मनुष्य हम सभी पशु-पक्षियों का कर्ता-धर्ता है और हमारी सारी आवश्यकताओं का ध्यान रखता है। बिना उसकी इच्छा के इस संसार में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। सभी जीव-जंतुओं के जन्म एवं मृत्यु उसी के हाथ में हैं। कोई भी सुख अथवा विपत्ति आने पर सबसे पहले उसका ही स्मरण किया जाता है। यह भी माना जाता है कि नैतिकता के विरुद्ध कार्य करने वालों को मनुष्य दण्डित करता है। कुछ पशु-पक्षी मनुष्य का रूप मानकर वृक्षों, पत्थरों, सूर्य इत्यादि की पूजा-अर्चना किया करते हैं, जबकि कुछ का यह विश्वास है कि मनुष्य का कोई वास्तविक रूप नहीं होता – वह कण-कण में है और सदा हमारी हर गतिविधि पर निगरानी रखता है।

वन के बड़े-बूढ़े बहुत आस्तिक हैं, परन्तु नई पीढ़ियों में मनुष्य के प्रति आस्था कम होती जा रही है। नई पीढ़ी का यह मानना है कि मनुष्य को कभी किसी ने इसलिए नहीं देखा क्योंकि असल में मनुष्य का कोई अस्तित्व ही नहीं है। उन्हें लगता है कि मनुष्य का आविष्कार बड़े-बूढ़ों द्वारा केवल इस कारण से किया गया था ताकि सब पशु-पक्षी, उस सर्वशक्तिमान के डर से, बनाए गए नियमों का पालन करते रहें। मुझे नहीं मालूम कि मनुष्य है भी या नहीं, किन्तु अपने शुभचिंतकों की प्रसन्नता के लिए मैं मनुष्य में आस्था रखने का दिखावा करता हूँ।

मेरा नाम अलंकार है और मैं एक मगरमच्छ हूँ। जब मैं कुछ ही महीनों का था, तब मैं मैथिली नदी में बहता हुआ न जाने कहाँ से निराला वन आ पहुँचा। ऐसा बताया जाता है कि मैथिली नदी के किनारे मैं महादेवी जी को मिला था। वह कछुआ प्रजाति की थीं और उस समय वन-विद्यालय में प्रधान-अध्यापिका के पद पर कार्यरत थीं। मेरे बारे में पता चलने पर वन के अधिकतर निवासी मुझे यहाँ रखे जाने के विरोध में थे। उन्हें डर था कि एक मांसाहारी जीव उनके वन की शांति में व्यवधान डाल देगा – पिछले कई वर्षों से निराला वन में केवल शाकाहारी जीव ही रहा करते थे। तब केवल महादेवी जी ने मुझे वन में रखे जाने का समर्थन किया। महादेवी जी निराला वन के वासियों में सबसे अधिक आयु की थीं और वन के अधिकतर पशु-पक्षियों ने उन्हीं की देख-रेख में शिक्षा प्राप्त की थी। इस कारण से सभी उनका बहुत आदर करते थे। अतः मुझे शरण प्रदान करने की उनकी बात, न चाहते हुए भी सबको माननी पड़ी। महादेवी जी ने मुझे रहने के लिए स्थान दिया और अपने बच्चों के साथ पाल-पोस कर बड़ा किया।

अब मेरी आयु बीस वर्ष है और मैं निराला वन की मत्स्य-सेना में एक सिपाही हूँ। हमारे वन में तीन सेनाएँ हैं – वानर-सेना, पक्षी-सेना और मत्स्य-सेना। यह सेनाएँ निराला वन की भीतरी सीमाओं पर निगरानी रखतीं हैं और क्रमशः थल, वायु और जल के रास्ते आने वाली किसी भी प्रकार की विपत्ति से वन की सुरक्षा करने के लिए जिम्मेदार हैं।

महादेवी जी कई वर्षों तक वन-विद्यालय में हिंदी साहित्य की शिक्षिका रही थीं, अतः हिंदी भाषा का मेरे हृदय में हमेशा से एक विशेष स्थान रहा है। जब मैं स्वयं विद्यालय

में पढ़ता था, तब हिंदी मेरा पसंदीदा विषय था। मुहावरे और लोकोक्तियाँ मुझे अत्यधिक लुभाते थे। महादेवी जी ने अपने समय में हिंदी साहित्य का सुनहरा दौर भी देखा था, अतः साहित्य के प्रति समाज के घटते हुए रुझान को देखकर वह अक्सर व्याकुल हो उठती थीं। बचपन में महादेवी जी हमें पंचतंत्र की कहानियाँ सुनाया करतीं थीं, जिनमें कुछ न कुछ सीख अवश्य होती थी – लालच न करने की सीख, केवल सच बोलने की सीख, बड़े-बूढ़ों का आदर करने की सीख, आवश्यकता से अधिक न बोलने की सीख इत्यादि। शिक्षा प्रदान करने वाली कहानियाँ महादेवी जी को अत्यंत पसंद थीं। आज मैं जो कुछ भी जानता हूँ, उसमें उनकी कहानियों का बड़ा योगदान है।

निजी रूप से मुझे वे कहानियाँ अत्यधिक लुभाती हैं जिन्हें सुनकर हर पाठक उनका एक अलग अर्थ निकाल सकता है। ऐसी कहानियाँ हम पर अपनी विचारधारा थोपने का प्रयास नहीं करतीं – बस हमको सोचने के लिए उकसाती हैं। हमारे वन में साहित्य की देवी मानी जाने वाली अरुंधति जी के अनुसार – "सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ बेहद सरल और साधारण होती हैं। वे आपको चौंकाने या छलने का प्रयास नहीं करतीं। आपको पता होता है कि वे कहानियाँ कैसे समाप्त होंगी, फिर भी आप उन्हें सुनना पसंद करते हैं।" यह एक ऐसी ही कहानी है। मेरे एक ऐसे अनुभव की कहानी जिसने मुझे सोचने पर विवश तो किया ही, साथ ही साथ मेरे इस संसार को देखने के तरीके को भी पूरी तरह परिवर्तित कर दिया। यह कहानी मेरे जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण यात्रा की भी है और इस विश्व में रहने वाले सब जीव-जंतुओं से भी गहरा सम्बन्ध रखती है। तब मैं उन घटनाओं को जैसे देख रहा था और आज मैं उन घटनाओं को जैसे देखता हूँ, उसमें धरती-आसमान का अंतर है। किन्तु आपको मैं सब घटनाएँ बिल्कुल वैसे ही बताऊँगा, जैसे उनका अनुभव मैंने स्वयं किया था।

# अध्याय दो – राजनीतिक दलदल

एक वन में रहने वाले जीव-जंतुओं को सम्मिलित रूप से वनवासी कहकर भी संबोधित किया जाता है। कहा जाता है कि इस विश्व में हमारे वन के जैसे हज़ारों वन हैं, परन्तु हमारे वन के वासियों को निराला वन की सीमा के बाहर जाने की अनुमति नहीं है। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व जब निराला वन की स्थापना हुई थी, तब सारे वनवासी अपनी इच्छा के अनुसार एक वन से दूसरे वन में आ-जा सकते थे। हमारे वन में भी तब बाहर से जीव-जंतुओं का आना-जाना लगा रहता था। फिर धीरे-धीरे दौर बदला और लगभग दो सौ वर्ष पूर्व एक समय ऐसा आया जब अपने वनों से अधिक दूर निकल जाने पर वनवासी रहस्यात्मक रूप से लापता होने लगे। अनेक प्रयास करने के बाद भी उनका कुछ पता न चल सका। हमारे राजनीतिज्ञों ने तब यह अनुमान लगाया कि अन्य वनों के मांसाहारी जीव, जो हमारे वनवासियों से अधिक शक्तिशाली थे, उन गुमशुदगियों के लिए जिम्मेदार रहे होंगे। यह सोचकर वन की सीमाओं पर सुरक्षा कड़ी कर दी गई तथा यह निर्णय लिया गया कि न तो बाहर से किसी को निराला वन में आने दिया जाएगा और न ही निराला वन के वासियों को यहाँ से बाहर जाने की अनुमति दी जाएगी। समय का पहिया घूमता रहा और यह निर्णय लिए जाने के बाद से कई वर्षों तक कोई दुर्घटना नहीं घटी।

निराला वन की बाहरी सीमाएँ कोसों दूर तक फैली हुई हैं, परन्तु सभी वनवासी वन की भीतरी सीमा के अन्दर ही रहा करते हैं। भीतरी सीमा वन के केंद्र से चारों दिशाओं में लगभग एक-एक कोस तक फैली हुई है। बाहरी सीमा वाले क्षेत्र में घने वन हैं और उस क्षेत्र को भी सुरक्षित माना जाता है, परन्तु वहाँ जाने से सारे वनवासी थोड़ा झिझकते हैं। पिछले कई वर्षों में बाहरी सीमा के निकट तो शायद ही कोई गया हो। सब ने वन के बाहर के खतरों के बारे में तरह-तरह की बातें सुनी हैं, परन्तु उन बातों में कितना सत्य है यह किसी को नहीं मालूम।

पचास वर्ष पूर्व जब वन की जनसंख्या दस हज़ार से ऊपर पहुँच गई, तो वन का प्रशासन कुशलतापूर्वक चलाने के लिए यह तय किया गया कि हर पाँच वर्षों में एक वन-प्रमुख का चुनाव किया जाएगा। वह वन-प्रमुख निराला वन के सारे वासियों की आवश्यकताओं को पूरा करने और सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी होगा।

यह कहानी लगभग एक वर्ष पहले की है, जब निराला वन में कोकिला जी को वन-प्रमुख का कार्यभार संभालते हुए पाँच वर्ष पूरे होने वाले थे। कोकिला जी एक कोयल थीं जिनका सभी वनवासी आदर करते थे। वह एक प्रभावशाली नेत्री थीं, जिन्होंने पिछले चुनावों में भारी मतों से विजय प्राप्त की थी। एक ओर उनके समर्थक उनकी सेवा-भावना का आदर करते थे, तो दूसरी ओर उनके आलोचक उन पर भ्रष्टाचारी और स्वार्थी होने का आरोप लगाते थे।

वैसे तो हमारे वन के सभी जीव बहुत शांतिप्रिय थे और आपस में सदा एकता व सौहार्द के साथ रहते थे, परन्तु पिछले कुछ महीनों से हमारे वन का राजनीतिक माहौल गर्माता

जा रहा था। कहा जा रहा था कि आने वाले पंच-वर्षीय चुनाव, जो बस कुछ ही दिन दूर थे, निराला वन के इतिहास के लिए एकदम अहम होंगे।

सामान्यतः चुनाव से पहले ही नतीजों का अनुमान लगा लिया जाता था, परन्तु इस बार दो नेताओं के बीच कड़ा मुकाबला होने के आसार दिखाई दे रहे थे। दोनों का राजनीतिक रुतबा ऐसा था कि उनके बड़े से बड़े आलोचक भी उनकी उपस्थिति में उनकी आलोचना करने से कतराते थे, अतः यह कहना कठिन था कि जीत किसकी होगी। एक ओर हमारी वन-प्रमुख कोकिला जी पुनः वन-प्रमुख चुने जाने की आशा कर रही थीं, तो दूसरी ओर उनके विरुद्ध चिन्तामणि जी खड़े थे जिनकी लोकप्रियता पिछले कुछ महीनों से लगातार बढ़ रही थी। वह एक भेड़ थे, जो चुनाव के लिए अपनी दावेदारी पेश करते हुए वन में रहने वाले पशुओं के मन में यह बात डाल रहे थे कि उनके हित में फैसले उस दिन ही लिए जा सकेंगे जिस दिन एक पशु वन-प्रमुख के पद पर विराजमान होगा। पिछले बीस वर्षों से वन का नेतृत्व वन-प्रमुख की पदवी पर बैठे पक्षी नेता कर रहे थे। चिन्तामणि जी के समर्थकों का मानना था कि वह निःस्वार्थ भाव से वनवासियों का विकास चाहते थे, जबकि उनके आलोचकों के अनुसार वह बँटवारे की राजनीति करने का प्रयास कर रहे थे और उनके भाषण सुनकर धीरे-धीरे समाज का ध्रुवीकरण हो रहा था।

ऐसा प्रतीत होता था जैसे सब वनवासी पहले से ही अपना दल चुनकर बैठे हुए हों – चिन्तामणि जी के समर्थक हर मुद्दे पर बिना सोचे-विचारे उनका डटकर समर्थन करते थे और उनके आलोचक उनकी हर बात का दबे स्वर में विरोध करते थे। किसी भी बात का तथ्यों के आधार पर मूल्यांकन करना तो जैसे सब वनवासी एकदम भूल चुके थे।

सबसे दुःखद बात तो यह थी कि इन दोनों गुटों का गठन विचारधारा के आधार पर नहीं, बल्कि वनवासियों की प्रजाति के आधार पर हुआ था। अधिकांश वनवासियों को तो यह भी नहीं मालूम था कि उनके द्वारा समर्थन किए जा रहे राजनीतिक दल का उद्देश्य क्या था। सभी पशु चिन्तामणि जी के पूर्ण समर्थन में थे, परन्तु पक्षियों को उनके तौर-तरीके फूटी आँख नहीं सुहाते थे। मुझ जैसे अल्पसंख्यक जिन्हें न तो पशु माना जाता था और न पक्षी – जैसे कछुए, मछलियाँ, तितलियाँ इत्यादि – बीच में बेबस खड़े यह राजनीतिक तमाशा देख रहे थे।

फिर एक दिन कुछ ऐसा घटित हुआ जिसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। चुनाव से केवल कुछ ही दिन पहले चिन्तामणि जी हर सुबह की तरह उठकर सैर करने निकले, परन्तु दोपहर होने तक वापस नहीं आए। उनके समर्थकों ने चिंतित होकर उनको वन की भीतरी सीमा के अन्दर ढूँढने का भरपूर प्रयास किया, किन्तु उनका कुछ पता नहीं चला। वन के एक वरिष्ठ नेता और जानी-मानी हस्ती के ऐसे अचानक लापता हो जाने से चारों ओर कोलाहल मच गया। वन-प्रमुख कोकिला जी पर चिन्तामणि जी के समर्थक यह आरोप लगाने लगे कि उन्होंने अपने प्रतिद्वंदी का अपहरण करवा दिया होगा, जबकि चिन्तामणि जी के विरोधी यह कयास लगाने लगे कि चुनाव में हार के डर से वह खुद ही कहीं भाग गए होंगे।

अटकलों को विराम देते हुए कोकिला जी ने सभी वनवासियों को मैदान में एकत्रित होने का आदेश दिया। जब वनवासी वहाँ पहुँचे तो कोकिला जी ने कहा कि एक योग्य नेता

अपने विरोधियों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर घबराता नहीं, बल्कि हर मुश्किल का डटकर सामना करता है। ऐसा कहकर उन्होंने यह निर्णय सुनाया कि चिन्तामणि जी की खोज में तुरंत पक्षी-सेना को चारों दिशाओं में भेजा जाएगा। आदेश पाकर पक्षी-सेना की प्रमुख सुभद्रा जी, जो एक मोनाल पक्षी थीं, वन के सभी पक्षियों को मैदान के एक ओर बुलाकर निर्देश देने लगीं। शीघ्र ही सारे पक्षी एक-एक कर के विभिन्न दिशाओं में चिन्तामणि जी की खोज करने के लिए निकल पड़े। हर पक्षी को उसके लिए निर्धारित की गई दिशा में बाहरी सीमा तक चिन्तामणि जी की खोज करने के आदेश दिए गए थे। यह उम्मीद लगाई जा रही थी कि विभिन्न दिशाओं में भेजे गए पक्षियों में से कोई न कोई देर रात तक कुछ उपयोगी समाचार लेकर आ जाएगा।

# अध्याय तीन – खोजी दल का गठन

हालाँकि पक्षियों को वन की बाहरी सीमा के भीतर ही चिन्तामणि जी की खोज करने के निर्देश दिए गए थे, अगली सुबह होने पर यह समाचार मिला कि कल्पना नाम की हंसिनी जो दक्षिण-पूर्वी दिशा में खोज करने गई थी, उड़ते-उड़ते वन की सीमा के बहुत दूर जा पहुँची थी और वहाँ से चिन्तामणि जी के बारे में कुछ जानकारी लेकर आई थी। सब वनवासियों को फिर मैदान में बुलाया गया और कल्पना ने एक ऊँचे वृक्ष की शाखा पर बैठकर पिछले दिन का वृत्तान्त बताना आरम्भ किया – "कल लगभग चौदह कोस की उड़ान भरने के बाद मैं एक सरोवर के पास पहुँची, जहाँ मुझे कुछ पक्षी मिले। जब मैंने उन्हें अपनी खोज के बारे में बताया और चिन्तामणि जी का हुलिया समझाया तो वे विचलित हो उठे। उन्होंने दोपहर में चिन्तामणि जी को दो विचित्र जीवों के साथ वहाँ से दक्षिण दिशा की ओर जाते हुए देखा था। उन्होंने मुझे बताया कि दक्षिण दिशा में विचित्र नदी के तट पर विचित्र वन है, जिसमें वे जीव निवास करते हैं। सभी प्राणी हमेशा उस वन और नदी से एक सुरक्षित दूरी बनाकर रखते हैं, क्योंकि उस दिशा में जाने वाला कोई भी जीव लौटकर नहीं आता।"

यह सुनकर वनवासियों के पैरों तले जमीन खिसक गई। निराला वन में भी दक्षिण दिशा को बाकी दिशाओं से अधिक भयानक माना जाता था। लोक-कथाओं के अनुसार, दक्षिण दिशा में पाताल नामक एक शापित वन था जहाँ राक्षस निवास करते थे। सभी वरिष्ठ नेताओं की एक आपातकालीन बैठक बुलाई गई और उसमें यह निर्णय लिया गया कि चिन्तामणि जी की खोज करने के लिए एक खोजी दल का गठन किया जाएगा, जो उन्हें ढूँढकर वापस लाने हेतु विचित्र वन की ओर प्रस्थान करेगा। कई वनवासियों ने दक्षिण दिशा के कथित खतरे के डर से इस फैसले का विरोध किया, किन्तु चिन्तामणि जी के समर्थकों को कोई और समाधान स्वीकार नहीं था। निराला वन के पिछले दो सौ वर्ष के इतिहास में यह पहली बार था जब किसी वनवासी को वन की सीमा से बाहर जाने की अनुमति दी जा रही थी, किन्तु कोई भी स्वयं खोज पर जाने को तैयार न था – यहाँ तक कि चिन्तामणि जी के बड़े से बड़े समर्थक भी नहीं। विचित्र वन की जल-वायु के बारे में कोई जानकारी न होने के कारण यह तय किया गया कि तीनों सेनाओं से एक-एक सिपाही को खोजी दल में शामिल किया जाएगा। चिन्तामणि जी की खोज करना आवश्यक था, परन्तु सब इस बात से सहमत थे कि तीन से अधिक वनवासियों की जान को जोखिम में डालने में कोई समझदारी नहीं थी।

तीनों सेनाओं के प्रमुखों के साथ बैठक के बाद जब कोकिला जी ने अपना निर्णय सुनाया तो वही हुआ जिसका मुझे डर था। वन का एकमात्र मगरमच्छ होने के कारण मुझे मत्स्य-सेना का सबसे शक्तिशाली सिपाही माना जाता था, अतः मत्स्य-सेना से खोज पर जाने के लिए मुझे चुना गया था। हवाई मार्ग में यात्रा करने के लिए कल्पना का चयन हुआ था क्योंकि खोज की सही दिशा केवल उसे मालूम थी। आश्चर्यचकित करने वाली बात यह थी कि दल के तीसरे सदस्य के रूप में वानर-सेना के प्रमुख नन्दन को हमारे साथ भेजा जा रहा था। सुनने में आ रहा था कि नन्दन ने स्वयं इस खोजी दल में खुद को शामिल किए जाने का आवेदन किया था – वह एक बहादुर और शक्तिशाली

योद्धा तो थे ही, चिन्तामणि जी की राजनीतिक विचारधारा के प्रबल समर्थक भी थे।

हमारे वन की जनसंख्या बहुत अधिक नहीं थी, अतः अधिकतर वनवासी एक-दूसरे को पहचानते थे। नन्दन और कल्पना के बारे में भी मैंने सुना तो बहुत कुछ था, किन्तु उन दोनों से पहले कभी बात नहीं की थी। उसका एक कारण यह भी था कि मैं अपना अधिकांश समय अकेले बिताया करता था और वनवासियों से मिलना-जुलना या बातें करना मुझे नहीं भाता था। वन के सभी जीव पानी पीने व विश्राम करने के लिए मैथिली नदी के तट पर आते थे, जहाँ वे घंटों तक आपस में बातचीत किया करते थे। नदी में गश्त लगाते समय, उन सबकी बातें सुनकर मुझे वन के अधिकतर समाचार मिल जाते थे। वन का इकलौता मगर होने के कारण मुझे जानता तो हर कोई था, मगर वन में ऐसे बहुत कम प्राणी थे जो मेरे मित्र थे। हालाँकि कोई मेरे साथ दुर्व्यवहार नहीं करता था, परन्तु मुझे अक्सर ऐसा लगता था कि इतने वर्षों बाद भी उन्होंने मुझे पूरी तरह नहीं अपनाया था। पिछले कुछ महीनों में, बदलते राजनीतिक परिदृश्य के कारण यह व्यवहार बदतर होता जा रहा था – अपने से अलग दिखने वाले जीवों से वनवासी धीरे-धीरे दूरियाँ बढ़ाने लगे थे।

कल्पना का व्यवहार मुझसे एकदम विपरीत था। उसे बातचीत करना अत्यधिक पसंद था। मैंने जितनी बार भी उसे देखा था बस बोलती ही रहती थी। वह पक्षी-सेना में कुछ ही समय पहले भर्ती हुई थी। अधिकतर वनवासी उसे अस्थिर स्वभाव का मानते थे क्योंकि वह कई बार अपनी आजीविका का माध्यम बदल चुकी थी। वह कुछ महीनों के लिए जल विभाग में सहायक अधिकारी रह चुकी थी, फिर वन की गायन-मंडली में गायिका, उसके उपरान्त वन के वृद्धाश्रम में स्वयंसेवक और पिछले कुछ महीनों से पक्षी-सेना में एक सिपाही।

नन्दन हम तीनों में सबसे अधिक अनुभवी होने के साथ-साथ सबसे अधिक शक्तिशाली भी थे। इतनी अधिक आयु में भी उनका सुडौल शरीर चट्टान जैसा मजबूत था। उनकी वीरता और नेतृत्व करने की क्षमता से वन में हर कोई अवगत था। समाज-सेवा करने का भाव तो जैसे उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। जब भी वन में कोई सामाजिक कार्यक्रम होते तो सभी कार्यकर्ताओं में नन्दन सबसे आगे रहते थे। कोई भी निजी समस्या आने पर, वन के जीव उनके पास सुझाव माँगने जाया करते थे। वनवासियों के अनुसार इस संसार में ऐसी कोई समस्या नहीं थी, जिसका नन्दन के पास समाधान न हो। बहुत ही कम आयु में वह वानर-सेना में एक सिपाही के रूप में भर्ती हुए थे तथा अपनी मेहनत, सूझ-बूझ और कार्यक्षमता के बल पर वानर-सेना में प्रगति करते-करते पिछले कुछ वर्षों से वानर-सेना के प्रमुख की भूमिका में कार्यरत थे। हालाँकि वह अभी भी अपनी से आधी आयु के वानरों से अधिक शक्तिशाली और फुर्तीले थे, उनकी बढ़ती आयु को ध्यान में रखकर समय-समय पर उनके हितैषी उन्हें वानर-सेना से कार्यमुक्त होकर, बाकी का जीवन आराम से बिताने का सुझाव देते रहते थे – परन्तु नन्दन उनकी एक न सुनते थे। वह सदा अपने कार्य में ही डूबे रहते थे और अपनी आखिरी साँस तक वन की सेवा करना चाहते थे। अपने कार्य से अधिक प्रिय यदि उन्हें कुछ था, तो वह थी उनकी आस्था। वह हर सुबह पूजा-अर्चना किया करते थे, परन्तु शायद ही उन्होंने मनुष्य से कभी अपने लिए कुछ माँगा हो।

हमारे दल को तुरंत चिन्तामणि जी की खोज में दक्षिण-पूर्वी दिशा में रवाना होने के आदेश दिए गए। जाने से पहले कोकिला जी ने हम तीनों को यह याद दिलाया कि पिछले दो सौ वर्षों में पहली बार निराला वन के किसी वासी को वन की सीमा से बाहर जाने की अनुमति दी जा रही थी। उन्होंने हमें बाहर की दुनिया के संभावित खतरे के बारे में सचेत किया और हमें साहस बँधाते हुए बताया कि खोजी दल के लिए हम तीनों का चयन बहुत सोच-विचार के बाद किया गया था। उन्होंने हम तीनों की क्षमता पर विश्वास व्यक्त किया और हमें मिल-जुल कर कार्य करने का निर्देश दिया। कोकिला जी से निर्देश पाकर और सफल होने का आशीर्वाद लेकर हम तीनों अपनी राह पर चल पड़े।

# अध्याय चार – आपसी मनमुटाव

हम तीनों में कोई समानता नहीं थी। एक-दूसरे से जितना अलग होना संभव था, हम उतने अलग थे। हाव-भाव एवं बाहरी संरचना में भी, और व्यवहार एवं सोच-विचार में भी।

यात्रा प्रारम्भ होने से पूर्व कल्पना ने हमें बताया कि जिस सरोवर के निकट उसे पक्षियों ने चिन्तामणि जी के बारे में जानकारी दी थी, उस तक पहुँचने के लिए हमें लगभग तेरह कोस तक मैथिली नदी के साथ-साथ दक्षिण-पूर्वी दिशा में जाना होगा और फिर लगभग एक कोस चलकर दक्षिण दिशा में उस सरोवर की ओर। नन्दन ने नदी के किनारे-किनारे वह दूरी तय करना आरम्भ किया, कल्पना ने उड़कर और मैंने नदी में तैरकर। हमारे गंतव्य स्थान की जानकारी केवल कल्पना को ही थी, अतः हमें सही राह पर ले जाने का उत्तरदायित्व उसने अपने पंखों पर उठाया हुआ था। कुछ दूरी तक वह मेरे अगल-बगल उड़ती और फिर कुछ दूरी तक नन्दन के। ऐसा करते हुए वह हमसे निरन्तर बोले जा रही थी, परन्तु मैं और नन्दन उसे अनसुना कर, अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर थे।

सूर्य ढलने से कुछ देर पहले हम उस सरोवर के उत्तरी तट पर पहुँच गए जहाँ कल्पना को पिछली शाम वे पक्षी मिले थे। सरोवर बहुत विशालकाय था – जहाँ तक दृष्टि जाती थी, बस जल ही जल दिखाई देता था। सरोवर के तट से कुछ ही दूरी पर एक वट-वृक्ष था, जिसके निकट हमने उस रात डेरा डालने का निर्णय लिया। आस-पास का दृश्य अद्भुत था। एक तरफ अपरिमित सरोवर था और बाकी दिशाओं में विभिन्न रंगों के ऐसे-ऐसे फूल खिले हुए थे जिन्हें हमने निराला वन में कभी नहीं देखा था। हमारे दाईं ओर आकर्षक नीले रंग के छोटे-छोटे फूल मुस्कुरा रहे थे, तो बाईं ओर बड़े-बड़े पीले फूलों का एक समूह एकटक डूबते हुए सूर्य को देख रहा था। जिस यात्रा को खतरों भरा सोचकर निराला वन में सब विचलित हो रहे थे, अभी तक वह यात्रा बहुत सुखद रही थी। चिंता की बात केवल यह थी कि पूरी यात्रा के दौरान हमें कोई भी अन्य जीव-जंतु नहीं दिखाई दिए थे।

कुछ देर वृक्ष के नीचे विश्राम करने के बाद, हम तीनों अपनी अगले दिन की रणनीति बनाने बैठे। जब हमारे दल ने बातचीत करना आरम्भ किया तो मैं अपने स्वभाव के अनुरूप एकदम चुप था। जब मुझसे सीधा सवाल पूछा जाता तो मैं बस हाँ या ना में सिर हिला देता। रणनीति बनाने और लागू करने का उत्तरदायित्व पूरी तरह नन्दन और कल्पना पर ही था। न तो उन्हें मेरी सहायता की आवश्यकता थी और न ही मुझमें उनकी सहायता करने की योग्यता। कल्पना ने सुझाया कि अगली सुबह होते ही वह हमारे विश्राम स्थल से पूर्व दिशा में उस कदम्ब के वृक्ष की ओर जाएगी जहाँ पिछले दिन उसे पक्षियों ने चिन्तामणि जी के बारे में सूचना दी थी और उनसे विचित्र वन जाने की सही दिशा का पता लगाएगी। यदि उसे वहाँ वे पक्षी न मिले तो वह उनकी खोज में उत्तर दिशा में सुन्दरनगर की ओर जाएगी, जहाँ उन पक्षियों ने अपना निवास स्थान होने की बात कही थी। उसने मुझे और नन्दन को आस-पास न भटकने और किसी सुरक्षित स्थान पर प्रतीक्षा करने का परामर्श दिया। उसका सुझाव था कि हमें कोई

जोखिम नहीं उठाना चाहिए क्योंकि हम एक अज्ञात स्थान पर थे। मुझे लगा था कि नन्दन कल्पना से अधिक अनुभवी होने के नाते उसकी योजना में कोई संशोधन करेंगे, किन्तु नन्दन ने कल्पना की सराहना करते हुए उसके सुझाव को मान लिया।

अगले दिन की कार्य-योजना पर नन्दन की स्वीकृति मिलने के उपरान्त, कल्पना ने व्यंग्य करते हुए कहा – "चिन्तामणि जी को विचित्र वन से तो हम बचा लाएँगे नन्दन, लेकिन उन्हें आने वाले चुनाव में हारने से बचाना तो हमारे लिए भी नामुमकिन होगा।"

नन्दन – "तुम चुनाव के नतीजों की चिंता मत करो। इस बार वनवासी पिछले बार की गलती हरगिज़ नहीं दोहराएँगे और चिन्तामणि जी को ही वन-प्रमुख चुनेंगे। तुम्हारी कोकिला जी तो खुद को हर समय चाटुकारों से घेरे रखती हैं और सिर्फ अपनी निजी जरूरतों का ख्याल रखती हैं। बाकी वनवासियों की जरूरतों की उन्हें भनक भी नहीं है। अपने पाँच साल के कार्यकाल में हम पशुओं के लिए उन्होंने आज तक कुछ नहीं किया है।"

कल्पना – "आप हर बात को हमेशा पशुओं और पक्षियों के बारे में क्यों बना देते हैं? साल दर साल और पीढ़ी दर पीढ़ी कोई समाज किस दिशा में जाएगा, उसका फैसला उस समाज का नेतृत्व करने वाले ही करते हैं। क्या हमारे लिए फिर से एक ऐसा नेता चुनना संभव नहीं है जो सब वनवासियों की जरूरतों का ध्यान रखे?"

नन्दन – "मैं तो चिन्तामणि जी की राजनीतिक विचारधारा से पूर्ण रूप से सहमत हूँ। जब पशु और पक्षी एक-दूसरे से इतने अलग हैं, तो भला एक ही जैसे नियम-कानून उन पर कैसे लागू हो सकते हैं? उनकी जरूरतों को देखते हुए उनके लिए अलग-अलग कानून बनाए जाने चाहिए।"

कल्पना – "कहने और सुनने में तो बहुत अच्छा लगता है नन्दन, लेकिन इस बात पर कोई कैसे यकीन कर सकता है कि अलग कानून बनाए जाने के बाद उनका गलत इस्तेमाल नहीं किया जाएगा? अगर एक ही वन में सब रहते हैं तो फिर सब पर नियम-कानून भी एक जैसे ही लागू होने चाहिए न।"

नन्दन – "हमारे वन में कुछ वनवासी तो ऐसे भी हैं जिन्हें यह लगता है कि हमें निराला वन को दो हिस्सों में बाँट लेना चाहिए। ऐसा करने से कानून का कोई दुरुपयोग भी नहीं होगा और पशु हो या पक्षी दोनों अपने-अपने वनों में खुश रह सकेंगे।"

कल्पना – "मुझे तो आपकी राजनीतिक विचारधारा कभी समझ में नहीं आएगी, नन्दन। जो आपसे अलग हैं, आप उनके साथ सौतेला व्यवहार क्यों करना चाहते हैं? उनके अलग होने के कारण को समझकर अपनी आपसी असमानता को अपनाते क्यों नहीं? अगर पशु और पक्षी अपने लिए अलग-अलग वन बना लेंगे, तो फिर अलंकार जैसे उन जीवों का क्या होगा जिन्हें न तो पशुओं में गिना जाता है और न पक्षियों में?"

नन्दन – "यह फैसला तो उन्हें खुद ही करना होगा। हमें बहुत खुशी होगी अगर वे हमारे साथ रहे, लेकिन अगर वे तुम्हारे साथ जाने का निर्णय लेते हैं तो हमें वह भी मंज़ूर होगा।"

कल्पना – "कभी-कभी मुझे लगता है कि हमें चिन्तामणि जी की खोज में आना ही नहीं

चाहिए था। अगर हम उनको वापस निराला वन लेकर जाएँगे और गलती से वह चुनाव में जीत गए, तो वनवासियों की ज़िन्दगी में आने वाली तकलीफों के जिम्मेदार हम तीनों भी होंगे।"

नन्दन – "अगर चिन्तामणि जी के बारे में तुम ऐसा सोचती हो तो उनकी खोज करने के लिए हमारे साथ आई ही क्यों हो? तुम चाहो तो अभी भी वापस जा सकती हो। मैं और अलंकार तुम्हारे बिना भी उन्हें ढूँढ लेंगे।"

कल्पना – "कोकिला जी ने मुझे बहुत भरोसे से इस खोज पर भेजा है, नन्दन। उनका भरोसा मैं इतनी आसानी से नहीं तोड़ सकती। हाँ, यह जरूर कह सकती हूँ कि जितना आसान चिन्तामणि जी का चुनाव जीतना आपको लग रहा है, उतना आसान है नहीं। उनकी भेद-भाव और बँटवारे की राजनीति को सब भली-भाँति समझते हैं। वहीं कोकिला जी में फिर से वन-प्रमुख चुने जाने की सारी खूबियाँ हैं। उन पर आरोप लगाने से पहले आप यह भूल जाते हैं कि राजनीति में दूध का धुला कोई नहीं होता। सब कुछ आपस में इतना उलझा हुआ होता है कि कोई लाख चाहे तब भी राजनीति के दलदल में साफ़-सुथरा नहीं रह सकता।"

राजनीति के किसी भी मुद्दे को लेकर वे दोनों एक-दूसरे से सहमत नहीं थे। उनकी मानसिकता एक-दूसरे से बिल्कुल विपरीत थी और वे एक-दूसरे की हर बात का विरोध किए जा रहे थे। बीच-बीच में दोनों मेरी ओर भी देख रहे थे, जैसे मुझसे समर्थन की उम्मीद कर रहे हों। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि किसका साथ दूँ, अतः मैंने चुप रहना ही उचित समझा। राजनीति को समझना मेरे लिए असंभव था। हाँ, उनकी तब तक की बातें सुनकर एक बात स्पष्ट थी – कल्पना एक पक्षी होने के नाते कोकिला जी की राजनीतिक विचारधारा के समर्थन में थी और उनकी बुराइयों को भी उचित ठहराने का प्रयास कर रही थी, जबकि नन्दन एक पशु होने के नाते चिन्तामणि जी की ओर से मोर्चा संभाले हुए थे। मैंने अपने वन के कई मजबूत संबंधों को हमारे नेताओं की राजनीति की भेंट चढ़ते देखा था। जब राजनीति अच्छे-खासे मित्रों और सगे-सम्बन्धियों को आपस में लड़ा देती है, तो यह दोनों तो अभी एक-दूसरे को भली-भाँति जानते भी नहीं थे।

उनका वार्तालाप धीरे-धीरे गर्माता जा रहा था और मैं केवल चुपचाप सुन रहा था। थोड़ी देर तक उनकी बातचीत सुनते रहने के बाद मैंने आँखिरकार सरोवर के तट की ओर प्रस्थान किया और अपने विश्राम करने की व्यवस्था करने लगा। सरोवर के किनारे दलदली धरती पर लेटते ही मेरे दिन भर की थकान दूर होने लगी। नन्दन और कल्पना के वाद-विवाद की ध्वनि अभी भी सुनाई दे रही थी, परन्तु मैंने आँखें बंद कर लीं और मुझे नींद की लपटों ने कब अपनी चपेट में ले लिया, मुझे पता भी नहीं चला।

# अध्याय पाँच – नन्दन का सुझाव

अगली सुबह जब हम जागे तो आस-पास का दृश्य मन को मंत्रमुग्ध कर देने वाला था। एक ओर से उगते हुए सूर्य का प्रतिबिम्ब सरोवर के पानी से टकराकर अपना सुनहरा प्रकाश चारों दिशाओं में बिखेर रहा था, तो दूसरी ओर कुछ ही दूरी पर पारिजात के वृक्ष के नीचे सफ़ेद फूलों की एक चादर बिछी हुई थी। सरोवर की ओर से बहने वाली ठंडी हवाएँ शरीर को सुकून प्रदान कर रही थीं और दूर उत्तर दिशा से पक्षियों के गीतों के सुरीले स्वर सुनाई दे रहे थे।

सबसे अधिक हैरान करने वाली बात यह थी कि नन्दन और कल्पना के व्यवहार में एक-दूसरे के प्रति बिल्कुल भी कड़वापन नहीं था – जैसे कि पिछली रात की नोंक-झोंक हुई ही न हो। यदि किसी ने मेरी हर बात का वैसे विरोध किया होता जैसे वे दोनों एक-दूसरे का पिछली रात कर रहे थे, तो मेरे व्यवहार में अगले कई दिनों तक उसका प्रभाव दिखता। शुक्र है नन्दन और कल्पना लगभग हर मायने में मुझसे भिन्न थे।

हमें जल्द वापस आने का आश्वासन देकर, पिछली रात बनाई गई योजना के अनुसार, कल्पना ने उन पक्षियों की खोज में सरोवर के किनारे-किनारे पूर्वी दिशा की ओर उड़ान भरी। मैं और नन्दन वहीं ठहरकर उसके वापस आने की प्रतीक्षा करने लगे। काफी देर तक न तो नन्दन ने कुछ कहा और न मैंने। फिर नन्दन ने बातचीत की पहल करते हुए मुझसे पूछा – “अलंकार, एक बात बताओ। क्या तुम हमेशा ही कम बोलते हो, या वन से पहली बार इतनी दूर आने के कारण कल से चुप हो?”

यह प्रश्न मुझसे अक्सर पूछा जाता था। मैंने अपनी आँखें झुकाते हुए कहा – “मुझे बातचीत करना अच्छा नहीं लगता।”

यह सुनकर नन्दन धीमे से मुस्कुराए और फिर थोड़ी देर के लिए चुप हो गए। शायद उन्हें यह उम्मीद थी कि वार्तालाप को जारी रखने में मैं उनकी सहायता करूँगा। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद भी जब उन्हें आशा की कोई किरण नहीं दिखाई दी, तो उन्होंने फिर कहा – “तुम्हें बातचीत करना अच्छा नहीं लगता या बातचीत करने में डर लगता है? अगर गहराई से सोचा जाए तो दोनों में बहुत बड़ा फ़र्क है।”

मेरे हाव-भाव देखकर नन्दन शायद यह समझ गए कि मैंने इस विषय पर पहले कभी विचार नहीं किया था, अतः मेरे उत्तर की प्रतीक्षा न करते हुए उन्होंने अपनी बात जारी रखी – “हमें अपने आप से हमेशा यह पूछना चाहिए कि कोई कार्य न करने के हमारे निर्णय के पीछे कारण क्या है। अगर कार्य करने की इच्छा नहीं है तो ठीक है, लेकिन अगर उस कार्य में विफल होने के डर से हम वह कार्य करने से कतराते हैं, तो हमें अपने निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहिए।”

“मैं इस बात पर आपसे पूर्णतः सहमत हूँ।” – मैंने कहा। मैं अभी भी शब्दों का नपा-तुला उपयोग ही कर रहा था। मुझे बचपन से यह सिखाया गया था कि बिना सोचे-विचारे बोलने वालों से अधिक समझदार वे होते हैं जो अपने शब्दों का प्रयोग सोच-समझ कर करते हैं।

नन्दन शायद मेरी असहजता को महसूस कर सकते थे। उन्होंने एक गहरी साँस ली और कहा – “मैं तुम्हारी मनोदशा समझता हूँ। मैं भी जब छोटा था तो अपनी ही दुनिया में रहना पसंद किया करता था – अनजान प्राणियों या परिस्थितियों का सामना करने के नाम पर ही मेरे हाथ-पैर फूल जाते थे। लेकिन जैसे-जैसे मैं बड़ा होता गया, मैंने यह जाना कि जब तक हम अपने डर का सामना नहीं करेंगे तब तक हमारा विकास असंभव है। जब मैंने अजनबियों से मिलना-जुलना शुरू किया तब मुझे पता चला कि मेरे जीवन में किस चीज़ का अभाव था। मेरा यकीन मानो मैंने आज तक जितने भी वनवासियों से बात की है, हर किसी से मुझे कुछ न कुछ नया सीखने को मिला है।”

“आप तो हमारे वन की एक जानी-मानी हस्ती हैं और सभी वनवासी आपका आदर करते हैं। आपसे तो हर कोई बातचीत करना चाहता होगा। मेरे साथ भला कोई क्यों अपना समय व्यतीत करना चाहेगा?” – मैंने पूछा। मुझे सहज बनाने का नन्दन का प्रयास धीरे-धीरे अपना असर दिखा रहा था।

नन्दन – “हम कौन हैं या कैसे हैं, वह हमारे नियंत्रण में नहीं होता। लेकिन हम अपने बारे में क्या सोचते हैं, वह पूरी तरह हमारे ही नियंत्रण में होता है – और जो हम अपने बारे में सोचते हैं, धीरे-धीरे हम वही बन जाते हैं। तुम्हें शायद नहीं मालूम कि हमारे वन के निवासी तुम पर कितना गर्व करते हैं। पूरा वन यह जानता है कि तुम्हारे मत्स्य-सेना में होते हुए नदी की तरफ से हम पर कोई विपत्ति नहीं आ सकती। बस वे सब यह नहीं जानते कि तुम उनसे बातचीत करने से घबराते हो। उन्हें लगता है कि तुम्हें अपनी प्रतिभा का अहंकार है। यह यात्रा शुरू होने से पहले मेरी भी तुम्हारे बारे में यही राय थी, लेकिन तुमसे मिलकर मैंने जाना कि तुम शर्मीले स्वभाव के हो।”

“जिसे आप मेरा शर्मीला स्वभाव सोच रहे हैं और बाकी वनवासी मेरा अभिमान, वह शायद मेरे आत्मविश्वास की कमी है। जब मैं छोटा था तब मैंने कई बार अपनी आयु के पशु-पक्षियों के साथ मित्रता करने का प्रयास किया, परन्तु वे सब मुझसे बातचीत करने से भी कतराते थे। धीरे-धीरे मैंने निराश होकर वार्तालाप की पहल करना छोड़ दिया।” – मैंने नन्दन की ओर देखकर कहा।

नन्दन – “समय के साथ सब बदल जाता है अलंकार! समय तब कुछ और था, आज कुछ और है। तब तुम निराला वन में नए-नए आए थे, शायद इसलिए सब तुम्हें संदेह की निगाह से देखते थे। अब तुम्हें वन में रहते हुए इतने वर्ष हो गए हैं और सब तुम्हारा बहुत आदर करते हैं। तुम एक बार फिर से वनवासियों से बातचीत करने की कोशिश करके तो देखो। अगर हर दिन तुम सिर्फ एक वनवासी से बात करो, तो कुछ ही दिनों में तुम्हें उनके व्यवहार में और अपने आत्मविश्वास में फ़र्क दिखाई देने लगेगा।”

“जी। मैं अपनी ओर से पूरा प्रयास करूँगा।” – मैंने दृढ़तापूर्वक कहा।

नन्दन – “हम सभी के जीवन में बातचीत की एक अहम भूमिका होती है। बड़े से बड़े मुद्दे आपस में बात कर के सुलझाए जा सकते हैं। इस दुनिया में हो रहे अधिकतर टकराव की जड़ निष्कपट बातचीत का अभाव ही तो है। जब तक हम अपने से अलग विचारधारा के जीवों से बातचीत नहीं करेंगे, उनके विचारों को कैसे जानेंगे?”

मैं नन्दन की इस बात से पूर्णतः सहमत नहीं था। मैंने पूछा – “कल रात आप और कल्पना, विपरीत विचारधारा होने के बावजूद वार्तालाप करने का भरपूर प्रयास कर

रहे थे, परन्तु वह वार्तालाप जैसा कम और वाद-विवाद जैसा अधिक प्रतीत हो रहा था। क्या आपको सच में लगता है कि विपरीत विचारधारा वालों से बहस करके उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाया जा सकता है?"

नन्दन – "वह तो इस बात पर निर्भर करता है कि सामने वाला सुनने की इच्छा रखता है या केवल बहस करने की। कल कल्पना और मैं एक-दूसरे का नज़रिया समझने की कोशिश कर रहे थे। कहा जाता है कि अलग-अलग विचारधारा रखने वाले वासियों से ही एक प्रगतिशील समाज बनता है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि जीवन के हर क्षण में हमारे नज़रिए को पूरी तरह से बदल देने की काबिलियत होती है। जरूरत है तो बस अपने विचारों को थोड़ा लचीला बनाने की – हमें कोशिश करनी चाहिए कि जिस बात का हम पूर्ण रूप से समर्थन करते है, उसके विपरीत तथ्यों के सामने आने पर हम रक्षात्मक न हों और हमेशा अपनी धारणाओं का पुनः आकलन करने के लिए तैयार रहें। और हाँ, बातचीत करने से तो बिल्कुल नहीं कतराना चाहिए। हम जब तक दूसरों से वार्तालाप नहीं करेंगे, तब तक उनके अनुभवों से सीखने का मौका खोते रहेंगे।"

"अच्छा एक बात बताइए" – मैंने अपनी जिज्ञासा दूर करने के लिए अपना अगला प्रश्न पूछा – "कल इतना लड़ने-झगड़ने के बाद भी आज मैंने आप दोनों के व्यवहार में एक-दूसरे के प्रति कोई अंतर नहीं देखा। क्या आपके मन में सच में कल्पना के लिए कोई बुरी भावना नहीं है?"

नन्दन – "कल्पना के कुछ शब्द कड़वे जरूर थे, लेकिन उसका दिल एकदम साफ़ है। उसके जैसे प्राणी दुनिया में कम ही बचे हैं। जो उसके मन में होता है, वही उसकी ज़ुबान पर भी होता है। और ऐसे जीवों की सबसे अच्छी आदत क्या होती है, पता है? वे चाहकर भी कोई बात अपने भीतर छिपाकर नहीं रख सकते। वे यह जानते हैं कि अपने अन्दर किसी बात को दबाकर खुद ही जलते रहने से तो लाख गुना अच्छा है कि हम अपने मन की सारी बातें साफ़-साफ़ बोल दें। कल्पना के इस बरताव के लिए उसके बारे में बुरी भावना अपने मन में लाने का तो सवाल ही नहीं उठता है। हाँ, राजनीतिक मुद्दों पर हमारे विचार ज़रा भी नहीं मिलते, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं उसकी सारी अच्छाइयों को भी अनदेखा कर दूँ।"

नन्दन की बातों में उनके विचारों की परिपक्वता स्पष्ट रूप से झलकती थी। मैं उनकी हर बात से सहमत नहीं था, परन्तु मैंने उनका विरोध करना उचित नहीं समझा और उनकी बातें सुनकर अपना सिर हिलाता रहा। काफी देर तक बातचीत करने के बाद नन्दन एक ऊँचे जामुन के वृक्ष पर जा बैठे और कल्पना के वापस आने की प्रतीक्षा करने लगे। इस दौरान अपनी थकान मिटाने के लिए मैं सरोवर में तैराकी करने उतर गया।

# अध्याय छः – सुन्दरनगर का इतिहास

सरोवर का जल एकदम ठंडा था, परन्तु जल में एक हल्की सी चिपचिपाहट थी जो शरीर पर महसूस हो रही थी। उसकी चिंता न करते हुए, मैं आँखें बंद कर के तैरने लगा और तैरते-तैरते किनारे से कुछ दूर जा पहुँचा। पिछले दिन की लम्बी यात्रा के बाद सरोवर में तैरने में जो सुकून था, वह शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता था जैसे सारे दुःख-दर्द उस सरोवर की शीतलता में घुल गए हों। कुछ क्षणों के लिए मैं यह भी भूल गया कि मुश्किलें अक्सर तभी आक्रमण करती हैं जब हम उनसे एकदम अनजान होते हैं। अचानक मेरे पूरे शरीर में दर्द की एक लहर दौड़ गई। ऐसा लगा जैसे किसी ने एक झटके में मेरी पूँछ काटकर अलग फेंक दी हो। मेरी आँखों में आँसू छलक आए। मैंने आव देखा न ताव, फुर्ती से पलटकर अपनी पूरी शक्ति से वापस नन्दन की दिशा में तैरना आरम्भ किया। कुछ ही क्षणों में मैं वापस तट पर था। वहाँ पहुँचकर झिलमिलाती हुई आँखों से जब मैंने अपनी पूँछ की ओर देखा तो मैं स्तब्ध रह गया। मेरे ही जैसे दिखने वाले एक प्राणी ने मेरी पूँछ को अपने दाँतों के बीच में दबा रखा था। उसकी शारीरिक बनावट बिल्कुल मेरे जैसी ही थी, परन्तु वह कद-काठी में मुझसे छोटा था। मेरी पूँछ पर उसकी पकड़ इतनी मजबूत थी कि मेरे साथ-साथ वह भी तट तक आ पहुँचा था। जितनी शक्ति मुझ में बची थी वह सब एकत्रित कर के मैंने उससे पूछने का प्रयास किया – "मुझ पर क्यों आक्रमण किया? मुझसे भला तुम्हारी क्या शत्रुता है?" किन्तु मेरे कंठ से केवल कराहने की ध्वनि ही निकल सकी।

संकट की अनुभूति होने पर नन्दन तुरंत मेरी रक्षा हेतु वृक्ष से नीचे उतर आए। इससे पहले कि नन्दन उस प्राणी की तरफ अपना पहला कदम बढ़ाते, उस प्राणी की आँखों से टप-टप कर के आँसू बहने लगे और उसने मेरी पूँछ पर अपनी दर्दनाक पकड़ को ढीला कर दिया। तब जाकर मेरी जान में जान आई।

"मेरा नाम विक्रम सम्वत है। मैं यहाँ से पूर्वी दिशा में बहने वाली जयशंकर नदी में रहने वाला एक घड़ियाल हूँ। यह संधि सरोवर है और मैं अक्सर इस सरोवर में भोजन की तलाश में आता हूँ।" – उस प्राणी ने सिसकते हुए कहा। फिर मेरी ओर देखकर बोला – "मुझे माफ़ कर दो। आज एक अजनबी को इस सरोवर में तैरता हुआ देख मुझे समझ में नहीं आया कि क्या करूँ और तुम्हें डराने के लिए मैंने तुम्हारी पूँछ पर प्रहार कर दिया।"

पहली बार अपने जैसे किसी प्राणी को देखकर मैं बहुत उत्साहित था। मेरे मन में उसके लिए बहुत सारे प्रश्न थे। परन्तु, उसकी आँखों से बहते आँसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे। उसको शांत कराने का प्रयास करते हुए मैंने पूछा – "दर्द तो मुझे हो रहा है, किन्तु मेरी आँखों से अधिक आँसू तुम्हारी आँखों से बह रहे हैं। बिना किसी बात के तुम इतना भावुक क्यों हो रहे हो?"

विक्रम – "हम घड़ियाल स्वभाव से ही ज़रा भावुक किस्म के जीव होते हैं। हमारी पूरी प्रजाति रोने के लिए ही प्रसिद्ध है – छोटी-छोटी बातों पर हम जज़्बाती हो जाते हैं और हमारी आँखों में आँसू आ जाते हैं। हम सब जीवों के जज़्बात ही तो हमें निर्जीव वस्तुओं से अलग बनाते हैं, फिर अपनी भावनाओं को दूसरों की प्रतिक्रिया के डर से छिपाने का भला क्या फ़ायदा?" ऐसा कहकर उसने अपने आँसुओं को पोछा और हमसे पूछा –

“यहाँ कैसे आना हुआ? तुम दोनों को पहले तो यहाँ कभी नहीं देखा।”

हमने विक्रम को अपना परिचय दिया और वहाँ आने के उद्देश्य के बारे में विस्तारपूर्वक बताकर उससे विचित्र वन के बारे में पूछा। विचित्र वन का नाम सुनते ही विक्रम के चेहरे पर भय दिखने लगा, किन्तु उसने साहस जुटाकर कहा – “विचित्र वन की दिशा में अगर तुम न जाओ तो उसी में तुम सब की भलाई है। वहाँ तुम्हें निराशा के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा। आज तक कोई भी जीव विचित्र नदी के उस पार से सही-सलामत वापस नहीं आया है। जो गिने-चुने वापस आ भी जाते हैं, वे अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और बहकी-बहकी बातें करने लगते हैं। न जाने क्या है उस नदी के दूसरी ओर! अपने एक नेता की जान बचाने की नाकाम कोशिश में कहीं तुम दोनों भी अपनी जान से हाथ न धो बैठो। रही बात तुम्हारी तीसरी साथी की, तो वह तो अब वापस आने से रही। मेरी सलाह मानो और तुम दोनों भी लौट जाओ।”

नन्दन – “लेकिन कल्पना तो उत्तर दिशा की ओर गई है। क्या वहाँ भी किसी प्रकार का खतरा है?”

विक्रम – “वहाँ सुन्दरनगर है। वह वापस क्यों नहीं आएगी, यह समझने के लिए तुम्हें पहले सुन्दरनगर का इतिहास जानना होगा। अगर कहो तो सुनाऊँ?”

विक्रम से मुलाकात होने से पहले मुझे लगता था कि इस विश्व में कल्पना से अधिक बोलने वाले जीव को ढूँढना असंभव होगा, परन्तु विक्रम के बोलने की क्षमता कल्पना से कई गुना अधिक प्रतीत होती थी। हमें जिज्ञासा थी कि विक्रम को कल्पना का वापस आना असंभव क्यों लगता है, अतः हमने उससे सुन्दरनगर का इतिहास हमें बताने का अनुरोध किया। बस फिर क्या था। विक्रम तो केवल हमारे संकेत की प्रतीक्षा कर रहा था।

विक्रम – “सुन्दरनगर का इतिहास बहुत प्राचीन है। लगभग सौ वर्ष पहले तक सुन्दरनगर का नाम साधारण नगर हुआ करता था। वहाँ का मुखिया था सत्योग्य नाम का एक हिरण। उसके साम्राज्य में सभी प्रजातियों के जीव खुशी और सौहार्द के साथ रहते थे। सत्योग्य के गुज़र जाने के बाद उसके पुत्र त्रेतायु को साधारण नगर का मुखिया चुना गया, मगर वह साधारण नगर का सही ढंग से संचालन नहीं कर सका। उसके नेतृत्व में अपने पिता वाली कोई भी बात नहीं थी। उसके सारे समर्थक बस इसलिए उसका समर्थन करते थे क्योंकि वे उसके पिता के वफादार थे। त्रेतायु की राजनीतिक विफलता से परेशान होकर साधारण नगर के पक्षियों ने अपना एक अलग गुट बना लिया और अगले चुनाव में द्वापरी नाम की एक मोरनी को उनके विरुद्ध उतार दिया। त्रेतायु के प्रति जानवरों में घटते विश्वास के कारण द्वापरी को उन चुनावों में बहुमत के साथ जीत मिली। बस फिर क्या था, सत्ता में आते ही द्वापरी पक्षियों के हित में फैसले लेने लगी और उसने अन्य जीवों की जरूरतों को अनदेखा करना शुरू कर दिया। द्वापरी के बाद उसके बड़े बेटे कल्युगी ने साधारण नगर की कमान संभाली। उसके साम्राज्य में पक्षियों की स्थिति दिन-प्रतिदिन सुधरने लगी, मगर अन्य जीवों पर अत्याचार बढ़ने लगे। धीरे-धीरे बाकी सारे जीव साधारण नगर छोड़कर जाने लगे और एक समय ऐसा आ गया जब वहाँ सिर्फ पक्षी ही रह गए और पूरे क्षेत्र में कल्युगी का एकछत्र राज हो गया।“

नन्दन – “लेकिन इसमें गलत क्या है? अगर उनके राज में सब पक्षी सुख से रहते हैं, तो उनके शासन की तो मिसाल दी जानी चाहिए।”

विक्रम – “बात यहीं पर ख़त्म नहीं होती। आगे सुनो। अन्य जीवों के जाने के बाद साधारण नगर का नाम बदलकर पक्षीनगर रख दिया गया। अपना खुद का अलग वन मिलने पर वहाँ रहने वाले पक्षियों को लगा कि उनका अच्छा समय शुरू हो गया है। लेकिन अन्य जीवों को बाहर खदेड़ देने के बाद कल्युगी ने अपना रुख उन पक्षियों की तरफ किया जिन्हें वह अपने से तुच्छ मानता था। पहले चमगादड़, उसके बाद कौवे, मैना, उल्लू, चकोर, गौरैया इत्यादि सब निचली प्रजाति के माने जाने वाले पक्षियों को धीरे-धीरे नगर से बाहर निकाल फेंका गया और सिर्फ सुन्दर पक्षी रह गए जैसे मोर, नीलकंठ, हंस, बतख, चातक इत्यादि। अब वह स्थान सुन्दरनगर कहलाता है और वहाँ रहने वाले पक्षी अपने ही समाज द्वारा बनाए गए मापदंडों के हिसाब से खुद को निरन्तर सुन्दर बनाए रखने का प्रयास करते रहते हैं। जो भी पक्षी उन मापदंडों पर खरे नहीं उतर पाते, उन्हें सुन्दरनगर से निकाल दिया जाता है।”

नन्दन – “यह तो सचमुच निंदनीय है। जीवों की बाहरी बनावट के आधार पर भेद-भाव करने की भला कोई सोच भी कैसे सकता है! हमारे वन में तो हर कद-काठी के जीव पाए जाते हैं। सभी प्रजातियों के जीव यह भली-भाँति जानते हैं कि वे एक-दूसरे से अलग हैं और किसी बनावटी मापदंड की वजह से खुद को बदलने की बात कभी सोच भी नहीं सकते।”

विक्रम – “अगर हम अपने नेताओं का कौशल न देखकर उनकी नस्ल और प्रजाति के आधार पर उनका चयन करेंगे तो यही सब होगा। आज सुन्दरनगर में कल्युगी का रुतबा इंसानों से कम नहीं है। सुन्दरनगर के पक्षी उसके लिए जान बिछा देने से भी पीछे नहीं हटते। जब वह अपने महल से निकलता है तो उसकी एक झलक पाने के लिए वन के सारे पक्षी घंटों इंतज़ार करते हैं। उसे सुन्दरनगर में ऐसे पूजा जाता है जैसे वह साक्षात इंसान का रूप हो।”

सुन्दरनगर के इतिहास से अधिक आश्चर्य मुझे यह सुनकर हुआ कि मनुष्यों की कथाएँ केवल हमारे वन तक ही सीमित नहीं थीं, अतः अपनी जिज्ञासा दूर करने का प्रयास करते हुए मैंने विक्रम से पूछा – “क्या इस क्षेत्र के जीव भी इंसान में आस्था रखते हैं?”

विक्रम – “हाँ बिल्कुल रखते हैं। इंसान की परिभाषा सबकी अलग जरूर है और सभी उसे अलग-अलग नाम से बुलाते हैं – कोई इंसान कहता है तो कोई मनुष्य, कोई मानव कहता है तो कोई ईश्वर – मगर सभी जीव सदियों से इंसान के शौर्य की कथाएँ सुनते आ रहे हैं, तो उनमें कुछ न कुछ सच्चाई तो अवश्य होगी। आस्था न रखने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।”

“क्या तुम भी इंसान को मानते हो?” – मैंने फिर पूछा।

हमारे वार्तालाप को अपने निर्धारित लक्ष्य से भटकता हुआ देख नन्दन ने मेरे जिज्ञासा भरे प्रश्नों पर विराम लगाते हुए कहा – “अपने चारों ओर देखो। कितनी खूबसूरत है यह दुनिया। किसी न किसी ने तो इसे बनाया ही होगा।” – फिर विक्रम की ओर देखकर बोले – “तुम हमें सुन्दरनगर के बारे में बता रहे थे। अब वहाँ के क्या हालात हैं?”

विक्रम – “आज सुन्दरनगर सुन्दर पक्षियों के लिए इंसानों की पौराणिक नगरी दिल्ली के समान है। वहाँ उनके लिए सब सुविधाएँ उपलब्ध हैं। दूर-दूर के वनों से तरह-तरह के पक्षी पलायन कर के सुन्दरनगर में बसने आते हैं। अगर तुम्हारी हंसिनी एक बार गलती से भी सुन्दरनगर देख लेगी, तो फिर उसका वापस आना तो मुझे असंभव लगता है। मेरी सलाह मानो तो तुम दोनों भी अपने सफ़र पर यहीं विराम लगाओ और लौट जाओ। मेरा काम है तुम्हें सलाह देना, आगे तुम्हारी मर्ज़ी।”

थोड़ी और देर तक हमें इधर-उधर के किस्से-कहानियाँ सुनाने के बाद, विक्रम को याद आया कि उसे भोजन का प्रबंध कर के वापसी की यात्रा करनी थी और आधा दिन उसने हमारे साथ बातचीत करने में बिता दिया था। वह हमसे विदा लेकर वापस संधि सरोवर में उतर गया और देखते-देखते हमारी आँखों से ओझल हो गया।

विक्रम के जाने के बाद नन्दन ने यह सुझाव दिया कि दिन ढलने तक हम वहीं रुककर कल्पना के वापस आने की प्रतीक्षा करेंगे। यदि वह नहीं आई तो रात्रि में वहीं विश्राम करते हुए अपने आगे की योजना बनाएँगे। मैंने हर बार की तरह उनकी हाँ में हाँ मिला दी।

दिन चढ़ता जा रहा था और कल्पना का कहीं अता-पता नहीं था। हर एक क्षण, मन में यह विचार और गहराता जा रहा था कि शायद विक्रम की बात सच साबित होगी और कल्पना वापस नहीं आएगी।

।। अल्प-विराम ।।

# अध्याय सात – कल्पना का निर्णय

हमारे विस्मय की कोई सीमा नहीं रही जब दिन के तीसरे पहर की समाप्ति से कुछ देर पहले, जोश से भरी हुई कल्पना उत्तर-पूर्वी दिशा से उड़कर हमें अपनी ओर आती हुई दिखाई दी। उसके चेहरे पर प्रसन्नता देखते बनती थी। आते ही उसने हमें यह समाचार दिया कि वह सुन्दरनगर जाकर उन पक्षियों से मिली जिन्होंने चिन्तामणि जी को विचित्र जीवों के साथ जाते हुए देखा था। उन्होंने कल्पना को विचित्र वन जाने की दिशा तो समझाई, किन्तु उस तरफ न जाने की राय दी। उन्होंने उसे सुन्दरनगर में आकर बस जाने का आमंत्रण भी दिया। सुन्दरनगर की व्यवस्था देखकर कल्पना उससे बहुत प्रभावित लग रही थी। उसने हमें बताया कि सोच-विचार करने के बाद उसने यह निर्णय लिया था कि चिन्तामणि जी की खोज समाप्त करने के बाद वह सुन्दरनगर में जाकर बस जाएगी।

यदि मैं कल्पना की जगह होता तो शायद यह समाचार देकर सीधा सुन्दरनगर की ओर उड़ जाता और बेवजह चिन्तामणि जी को ढूँढने के चक्कर में अपनी जान जोखिम में नहीं डालता। संभवतः मैं सुन्दरनगर की नागरिकता मिलने का अवसर हाथ आने पर उसे तुरंत ले लेता और अपने साथियों को प्रतीक्षा करता हुआ सदा के लिए छोड़ देता। कल्पना के वापस आकर हमें जानकारी देने और इस खोज में सफलता पाने के उपरान्त ही सुन्दरनगर जाने के निर्णय ने मेरे मन में उसके प्रति सम्मान को बढ़ा दिया था। उसने कठिनाई से भागने के बजाए उसका सामना करने का निर्णय लिया था।

कल्पना ने दक्षिण दिशा की ओर संकेत करते हुए हमें यह बताया कि संधि सरोवर के उत्तरी छोर से दक्षिणी छोर की दूरी लगभग तीन कोस थी और सरोवर के दक्षिणी छोर से लगभग साढ़े-तीन कोस की दूरी पर विचित्र वन की उत्तरी सीमा थी। उस दिशा में अधिक खतरा होने का अंदेशा था, अतः कल्पना ने यह प्रस्ताव रखा कि विचित्र वन तक की यात्रा के दौरान हम तीनों को साथ में रहना चाहिए। सरोवर के किनारे कुछ दूर तक धरती दलदली थी जिस पर चलकर लम्बी यात्रा करना लगभग असंभव था, अतः नन्दन ने सुझाया कि सरोवर के दक्षिणी तट तक की यात्रा को कल्पना और मैं सरोवर के रास्ते तय करें तथा वहाँ पहुँचकर नन्दन की प्रतीक्षा करें। नन्दन स्वयं वह दूरी सरोवर के पश्चिमी तट से लगे हुए वन के रास्ते तय करने वाले थे।

मैंने दक्षिणी छोर की ओर तैरना आरम्भ किया और कल्पना मेरे ऊपर-ऊपर उसी दिशा में उड़ान भरने लगी। कल्पना बीच-बीच में अपने प्राकृतिक व्यवहार के अनुसार कुछ न कुछ बोलती जा रही थी, परन्तु मैं चुप-चाप अपने गंतव्य स्थान की ओर बढ़ रहा था। कुछ देर बाद हम सरोवर के दक्षिणी तट पर पहुँच गए और वहाँ पहुँचकर नन्दन की प्रतीक्षा करने लगे। मेरी सहनशीलता की परीक्षा लेते हुए कल्पना ने एक बार फिर बोलना प्रारम्भ किया – “एक बात बताओ, अलंकार। मैंने तुम्हें अभी तक बोलते हुए नहीं सुना। क्या तुम कभी भी बात नहीं करते?”

उस सुबह नन्दन के साथ मेरे वार्तालाप का प्रारम्भ भी ठीक इसी प्रश्न से हुआ था। कल्पना का प्रश्न सुनकर मुझे यह संदेह हुआ कि पिछली रात मेरे सो जाने के बाद दोनों

ने मेरे इस व्यवहार के बारे में भी चर्चा की होगी। रास्ते भर कल्पना की बेहुदी बातें सुनकर मेरा पारा वैसे ही चढ़ा हुआ था। न जाने मुझे क्या सूझी और मैं अपने व्यक्तित्व के विपरीत तपाक से बोल पड़ा – "मैंने भी तुम्हें कभी चुप नहीं देखा। क्या तुम कभी भी चुप नहीं रहती?"

पता नहीं वह मेरे शब्दों का असर था या उन शब्दों को कहने के तरीके का, परन्तु कल्पना को मेरे द्वारा कही गई बात कहीं चुभ गई। उसके चेहरे के हाव-भाव तुरंत बदल गए। अपनी भावनाओं को मुझसे छिपाने का प्रयास करते हुए उसने अपना चेहरा दूसरी दिशा में मोड़ लिया, किन्तु मेरे लिए यह समझने के लिए एक क्षण ही काफी था कि मैंने उसकी किसी दुःखती रग पर हाथ रख दिया था। शायद ऐसी गलतफहमियों के भय से ही मैं चुप रहना अधिक पसंद करता था। बिना सोचे-समझे बोलकर अक्सर हम लोगों को ऐसी चोट पहुँचा देते हैं जिसे लाख प्रयासों के बाद भी भरना असंभव हो जाता है। सौभाग्य से कल्पना सामान्य जीवों से कई मायनों में अलग थी – लाख चाहकर भी वह किसी से क्षुब्ध नहीं रह सकती थी। वह अपने आप को सँभालते हुए वापस मेरी तरफ मुड़ी और बोली – "तुम लाख कोशिशें कर लो अलंकार, लेकिन मेरा मुँह बंद नहीं करा सकते।"

"यदि मेरी किसी बात से तुम्हें कष्ट पहुँचा हो, तो मुझे क्षमा करना" – मैंने झुकी हुई आँखों से अनुरोध किया।

कल्पना – "ऐसी कोई बात नहीं है। बस तुम्हारी बात सुनकर मुझे कुछ याद आ गया।" थोड़ा रुककर आँखों में शरारती मुस्कान लिए कल्पना फिर बोली – "अभी पहली बार तुम्हारी आवाज़ सुनी न, शायद इसलिए आँखों में खुशी के आँसू आ गए।"

कल्पना को एक बार फिर मुस्कुराता हुआ देख, मैंने राहत की साँस ली। "ऐसी क्या उदासी है तुम्हारे जीवन में? आज से पहले तो मैंने तुम्हें कभी उदासीन नहीं देखा।" – मैंने पूछा।

कल्पना – "कहा जाता है कि सबसे ज्यादा खुश वे दिखाई देते हैं जो असल में सबसे ज्यादा मायूस होते हैं। मुझे मायूसी बिल्कुल भी पसंद नहीं है, इसलिए मेरी हर पल यह कोशिश रहती है कि मैं खुद को खुश रख सकूँ।"

"इस बात पर मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ। मेरा मानना है कि जो भीतर से दुःखी होते हैं, वे बाहर से और भी अधिक दुःखी दिखाई देते हैं।" – मैंने कहा। मुझे नहीं मालूम कि यह नन्दन द्वारा दिए गए बातचीत करने के सुझाव का प्रभाव था या कल्पना को चोट पहुँचाने का प्रायश्चित करने का प्रयास, परन्तु मैं पहली बार स्वयं से किसी वार्तालाप को आगे बढ़ाने के लिए आतुर था।

कल्पना – "हो सकता है कि हम दोनों ही अपनी-अपनी जगह पर सही हों, अलंकार। मेरी माँ कहा करती थीं कि हर चीज़ को देखने के कई तरीके होते हैं, लेकिन हम अक्सर वह तरीका देखते हैं जो हमारे बाकी ख्यालों से मेल खाता है। इस दुनिया में कुछ भी परम सत्य नहीं होता – जिस बात को हम सच मानना चाहते हैं, वही हमारा सच बन जाता है।"

"बहुत खूब कहा तुमने। परन्तु विषय बदलने का प्रयास मत करो।" – मैंने कहा – "ऐसी

क्या मायूसी है तुम्हारे जीवन में, तनिक मुझे भी तो बताओ।"

कल्पना – "बचपन से मैं छोटी-छोटी बातों में खुशी तलाशने की कोशिश किया करती थी। मुझे आज भी वह समय अच्छी तरह याद है अलंकार, जब मैं अपना अधिकतर समय अपनी उम्र के बाकी पक्षियों के साथ बिताया करती थी। उनके साथ चोरी-छुपे लम्बी उड़ानों पर जाना, नज़र बचाकर बरसात के मौसम में ऊपर बादलों की तरफ उड़ जाना, ऊँचाई से पूरे वन और वनवासियों का छोटा-छोटा चींटी जैसा रूप देखना, दोस्तों के साथ पानी में गोते लगाना इत्यादि खेल मुझे बहुत पसंद थे। मैं इन साधारण लम्हों में खुशियाँ ढूँढने में इतनी मग्न हो गई कि मुझे पता ही नहीं चला कि कब मैंने अपनी खुशी से ज्यादा अहमियत दूसरों की खुशी को देना शुरू कर दिया।"

"यदि दूसरों की प्रसन्नता से किसी को स्वयं आनंद की अनुभूति होती है, तो उसमें मुझे तो कोई बुराई नहीं दिखाई देती।" – मैंने कहा।

कल्पना – "शुरुआत में मुझे भी उसमें कुछ गलत नहीं लगता था। फिर एक समय ऐसा आया जब मेरी माँ बहुत बीमार पड़ गईं। मैं अपना अधिक से अधिक समय उनके साथ बिताना चाहती थी, लेकिन दोस्तों के साथ अपने रिश्ते ख़राब न करने की चिंता में मुझे अपना अधिकतर समय घर से बाहर ही बिताना पड़ता था। मेरी माँ घर में एक जानलेवा बीमारी से जूझ रही थीं, और मैं न चाहते हुए भी अपने दोस्तों के साथ घूम-फिर रही थी – इस बात से बिल्कुल अनजान कि उन सब के घरों के हालात मेरे घर से बहुत अलग थे। मेरे अधिकतर दोस्तों को अलग-अलग कारणों से खुद अपने घरों में समय बिताना अच्छा नहीं लगता था – किसी को माता-पिता के अक्सर घर से बाहर रहने के कारण घर में सूनापन लगता था, तो किसी को अपने परिजनों का व्यवहार नापसंद था। इन कारणों से वे अपना समय घर से बाहर बिताना ज्यादा पसंद करते थे। लेकिन मेरे घर के हालात उनके घरों जैसे बिल्कुल नहीं थे। मेरे घर में मुझे खूब सारा प्यार करने वाले और मेरी हर जरूरत का ख्याल रखने वाले माता-पिता थे। मेरी माँ की बीमारी के दौरान जब उन्हें मेरी सबसे ज्यादा जरूरत थी, मैं दूसरों की मर्ज़ी के मुताबिक अपना समय उनसे दूर बिता रही थी। इन बातों का एहसास मुझे तब हुआ जब मेरी माँ एक लम्बी बीमारी के बाद चल बसीं। माँ के जाने के बाद मेरे पिता भी उदास रहने लगे और कुछ समय बाद वह भी गुज़र गए। दोनों की मौत के गम से बाहर निकलने में मुझे महीनों लग गए। उस दौरान मुझे अपने दोस्तों की सबसे अधिक जरूरत थी, लेकिन उन सब का कहीं अता-पता नहीं था। तब मैंने अपने व्यवहार का आकलन किया और मुझे समझ आया कि दूसरों की खुशी के लिए मैंने कैसे अपनी और अपने माता-पिता की जरूरतों को अनदेखा कर दिया था। मैंने यह फैसला लिया कि भविष्य में मैं अपनी जरूरतों को सबसे पहले रखूँगी। अब मैं कोई भी कदम उठाने से पहले दूसरों के बारे में न सोचकर खुद के जज़्बातों के बारे में सोचती हूँ। मुझे लगता है कि हम केवल तभी खुश रह सकते हैं जब हम यह समझें कि हमारी परिस्थिति के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं, कोई दूसरा नहीं। अपने दुखों या समस्याओं की जिम्मेदारी किसी और पर लादना कायरता है।"

यह बात सुनकर मुझे बिल्कुल भी आश्चर्य नहीं हुआ। कल्पना जो कह रही थी वह उसके व्यवहार में स्पष्ट रूप से झलकता था। परन्तु मैं ऐसे भी कई जीवों को जानता था – जैसे महादेवी जी और नन्दन – जो इस मामले में कल्पना से विपरीत विचार रखते थे और

अपना जीवन बस दूसरों की भलाई के लिए जीते थे। हैरान करने वाली बात यह थी कि दोनों ही विचारधाराओं के जीव अपनी-अपनी जगह सही थे। उनकी आवश्यकताएँ एक जैसी नहीं थीं, हालात एक जैसे नहीं थे, शायद इस कारण से जीवन जीने का तरीका भी एक-दूसरे से भिन्न था।

कल्पना बोले जा रही थी – "... फिर चाहे मेरा समय-समय पर अपना पेशा बदलने का फैसला हो या इस खोजी दल में शामिल होकर तुम्हारे साथ यहाँ आने का – सारे फैसले मैं अपनी खुशी को सबसे ऊपर रखकर ही लेती हूँ। दूसरों की खुशी की चिंता करना मैंने बंद कर दिया है। हम अक्सर यह भूल जाते हैं कि अपनी जरूरतों को पूरा करने की सबसे बड़ी जिम्मेदारी हमारी खुद की होती है। अगर हम अपनी खुशी की फ़िक्र खुद नहीं करेंगे तो कोई और भी नहीं करेगा। चिन्तामणि जी की खोज करने के बाद सुन्दरनगर जाने का फैसला भी मैंने इसी वजह से लिया है। मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था अलंकार कि इस दुनिया में सुन्दरनगर जैसी खूबसूरत कोई जगह हो सकती है। वहाँ पर ऐसी-ऐसी प्रजातियों के पंछी हैं जिन्हें... ... ... नन्दन! आप ठीक तो हैं?"

बातों-बातों में हमें यह भी ध्यान नहीं रहा कि नन्दन को अब तक हमारे पास पहुँच जाना चाहिए था। जब नन्दन हमें दूर से थके-हारे अपनी ओर आते दिखाई दिए, तब जाकर हम अपनी बातों के भूल-भुलैया से बाहर निकले। नन्दन के चेहरे का रंग उड़ा हुआ था, साँसे फूली हुई थीं, शरीर पर जगह-जगह खरोचें थीं और वह हाँफते हुए हमारी तरफ चले आ रहे थे।

# अध्याय आठ – विचित्र वन की यात्रा

नन्दन की अवस्था देखकर हमें कुछ क्षणों के लिए तो लगा कि हमें उस दिन की यात्रा वहीं समाप्त कर देनी पड़ेगी, किन्तु नन्दन ने सुझाव दिया कि हमें कुछ देर विश्राम करने के बाद अपनी योजना के अनुसार आगे बढ़ते रहना चाहिए। विश्राम करते समय नन्दन ने हमें बताया कि वन के रास्ते हमारी ओर आते समय उनका सामना कुछ जंगली पक्षियों से हुआ, जिन्होंने अपने क्षेत्र में एक अनजान प्राणी को देख उन पर क्रूरता से धावा बोल दिया। नन्दन किसी तरह अपनी जान बचाकर भागे, परन्तु उस भागा-दौड़ी में वह उस वन की गहराई में घुसते चले गए और दिशा भटक गए। कुछ देर भटकने के बाद उन्हें वन में एक तोता मिला जिसने उन्हें सही दिशा बताई। समय की अहमियत को समझते हुए नन्दन ने जल्द से जल्द हम तक पहुँचने के लिए अपनी पूरी शक्ति झोंक दी और गिरते-पड़ते हम तक पहुँचने में सफल रहे।

हमारे उस स्थान से निकलने तक चौथे पहर का प्रारम्भ हो चुका था। कुछ देर विश्राम करने के बाद नन्दन बेहतर महसूस कर रहे थे। दिन ढलने में जितना समय बचा था उसमें हमें काफी लम्बी दूरी तय करनी थी, अतः हमने दृढ़तापूर्वक दक्षिण दिशा की ओर चलना आरम्भ किया। जैसे-जैसे हम विचित्र वन की ओर बढ़ने लगे, हमें वातावरण में एक दुर्गन्ध की अनुभूति होने लगी। हमारे आगे बढ़ते कदमों के साथ दुर्गन्ध की तीव्रता बढ़ती जा रही थी और पेड़ों का घनत्व घटता जा रहा था। ढलते हुए सूर्य की रोशनी में दूर नदी के तट पर एक अकेला खड़ा सूखा वृक्ष दिखाई दे रहा था। अपनी आयु के भार से उसकी कमर झुक चुकी थी। पत्तियों का कहीं अता-पता न था, केवल तना एवं शाखाएँ शेष रह गई थीं। जैसे-जैसे हम विचित्र वन की दिशा में बढ़ने लगे, हरियाली सिमटने लगी, तथा धरती और भी पथरीली व बंजर होती गई।

सूर्यास्त होने से कुछ देर पहले हम उस सूखे वृक्ष के निकट पहुँच गए। कुछ दूरी पर विचित्र नदी पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर बह रही थी। नदी का पानी मटमैला था, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि वातावरण में फैली हुई असहनीय दुर्गन्ध का स्रोत वही है। नदी के उस पार का दृश्य तो आत्मा को भयभीत कर देने वाला था। वहाँ के वातावरण में रंगों का दूर-दूर तक कहीं अता-पता नहीं था। जहाँ तक हमारी दृष्टि जा सकती थी, धरती के ऊपर एक घना काला कोहरा दिखाई दे रहा था। उस कोहरे के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता था। सुरक्षा की दृष्टि से हमने यह तय किया कि हम तीनों साथ में वहीं वृक्ष के नीचे रात्रि-विश्राम करेंगे और सवेरा होने पर अपना अगला कदम उठाएँगे।

धीरे-धीरे रात गहराती गई और एक समय ऐसा आया जब चारों ओर अंधकार हो गया जिसमें कुछ भी देख पाना असंभव था। रात की नीरवता में वह स्थान और भी अधिक भयानक लगने लगा था। न तो वातावरण में पत्तियों के सरसराने की ध्वनि थी और न ही दूर-दूर तक किसी जीव-जंतु की उपस्थिति के कोई संकेत। विचित्र नदी का बहाव भी एकदम भावशून्य था और वह किसी चोर की भाँति बिना शोर किए चुपचाप बह रही थी। रात का सन्नाटा जैसे चीख-चीख कर आने वाले किसी भीषण संकट की ओर संकेत कर रहा था। आपस में दबे हुए स्वर में बोलने में भी यह भय लग रहा था कि कहीं हम

उस रात की पवित्र शांति को अपवित्र न कर दें। ऊपर आकाश में तारों का भी कहीं अता-पता नहीं था और केवल अंधकार ही दिखाई दे रहा था। धीरे-धीरे समझ में आ रहा था कि दक्षिण दिशा में आने से वनवासी इतना क्यों घबराते थे। जिस पाताल वन के बारे में हम बचपन से डरावनी कहानियाँ सुनते आए थे, ऐसा प्रतीत होने लगा कि आँखिरकार हम उसके द्वार पर आ पहुँचे थे।

उस भयानक वातावरण में हर क्षण मेरी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। मैं पहली बार जीवन में एक ऐसे स्थान पर था जहाँ चारों ओर निराशा का अंधकार था और आशा की एक किरण भी नहीं दिखाई दे रही थी। हमने कई बार आँखें बंद कर के सोने का प्रयास किया, परन्तु उस प्रदूषित वातावरण में नींद भी हमारे समीप आने से कतरा रही थी। बहुत प्रयास करने के बाद भी जब काफी देर तक किसी को नींद नहीं आई, तो कल्पना ने चुप्पी तोड़ते हुए दबे स्वर में कहा – "मेरे पास एक कमाल की तरकीब है। क्यों न इस अँधेरे का फ़ायदा उठाकर मैं चुप-चाप विचित्र वन जाऊँ और चिन्तामणि जी का कुछ पता लगाने की कोशिश करूँ।"

नन्दन – "नहीं कल्पना। मुझे लगता है कि कल सूर्योदय के बाद हमारा नदी के उस पार जाना ज्यादा उचित रहेगा। अभी इस अँधेरे में अगर तुम जाओगी भी तो शायद कुछ देख न पाओगी। सुबह होने पर हम तीनों चलेंगे। शायद तब तक कोहरा भी थोड़ा छँट जाए।"

कल्पना – "जैसा आप ठीक समझें, नन्दन। लेकिन हम तीनों का एक साथ जोखिम उठाना सही नहीं रहेगा। मैं सुबह एक बार ऊँचाई से उड़ते हुए पूरे वन का निरीक्षण कर आऊँगी और उसके बाद हम तीनों साथ में चलेंगे।"

कल्पना का सुझाव नन्दन को पसंद आया और यह निर्णय लिया गया कि हम अपनी योजना को सवेरा होने पर कार्यान्वित करेंगे। शेष रात्रि हमने सूर्योदय की प्रतीक्षा में उस वृक्ष के नीचे बिताई। हालाँकि मैंने कल्पना और नन्दन के साथ अभी भी बहुत अधिक समय व्यतीत नहीं किया था, उन दोनों के बारे में मेरे मन में जो विचार थे, वे धीरे-धीरे बदलते जा रहे थे। मैं उन दोनों के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित था और मुझे इस बात की प्रसन्नता थी कि इस यात्रा के दौरान मुझे उन दोनों को करीब से जानने का अवसर मिला।

# अध्याय नौ – चिन्तामणि जी की खोज

अगली सुबह सूर्य उगने के बाद भी कोहरा छँटने का नाम नहीं ले रहा था। कुछ देर प्रतीक्षा करने के उपरान्त, हमारी योजना के अनुसार कल्पना ने विचित्र वन की दिशा में उड़ान भरी। नन्दन और मैं वहीं वृक्ष के नीचे बैठकर उसके वापस आने की प्रतीक्षा करने लगे।

नन्दन किसी गहरी सोच में डूबे हुए थे। उनके माथे पर चिंता की लकीरें दिखाई दे रही थीं। थोड़ी देर बाद उन्होंने मेरी तरफ देखा और पूछा – "मैं एक दुविधा में हूँ। समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ। तुम्हारी सलाह मिल सकती है?"

मुझे मालूम था कि नन्दन जैसे दिग्गज को परामर्श देना मेरी क्षमता से बाहर था, किन्तु फिर भी मैंने कहा – "हाँ, कहिए न।"

नन्दन – "क्या तुम्हें याद है कि कल मुझे वन में एक तोता मिला था जिसने मुझे तुम तक पहुँचने का रास्ता बताया था? उसने मुझे एक बात और बताई थी जिसका ज़िक्र मैंने कल तुम दोनों से नहीं किया था। उसी के बारे में तुम्हें बताकर, तुमसे कुछ राय लेना चाहता हूँ।"

यह कहकर नन्दन कुछ क्षणों के लिए चुप हो गए। फिर बोले – "उसने मुझे यह जानकारी दी कि जहाँ वह मुझे मिला था वहाँ से कुछ ही दूरी पर पश्चिमी दिशा में एक वाटिका है जिसमें तरह-तरह के स्वादिष्ट फलों के वृक्ष हैं – आम, अमरूद, लीची, केले इत्यादि। वहाँ पर अनेक प्रजातियों के वानर विचरण करते हैं और ऐशोआराम से रहते हैं। मुझे देखकर उस तोते को लगा कि शायद मैं भटकता हुआ उसी वाटिका से वहाँ वन में पहुँच गया हूँगा। जब मैंने उसे अपनी असली मंज़िल के बारे में बताया, तब उसने मुझे तुम तक पहुँचने का रास्ता दिखाया।"

यह कहकर वह थोड़ी देर के लिए फिर चुप हो गए। कुछ क्षण सोच-विचार करने के बाद फिर बोले – "कल से मैं इसी उधेड़बुन में हूँ – क्या कल्पना की तरह मुझे भी अपना बाकी का जीवन अपनी प्रजाति के जीवों के बीच जाकर व्यतीत करना चाहिए?"

"इन सब बातों में तो आप मुझसे अधिक जानकार हैं। जो आपको सही लगता है, वही कीजिए।" – मैंने कहा।

नन्दन – "ऐसा कहा जाता है कि हम अक्सर जल्दबाजी में या जज़्बातों में बहकर ऐसे फैसले ले लेते हैं, जिन पर हमें बाद में पछतावा होता है, इसलिए मैं कोई भी फैसला जल्दबाजी में नहीं लेना चाहता। इस विश्व में दो तरह के जीव होते हैं – एक वे जो भावुक होते हैं और सारे फैसले दिल से लेते हैं, दूसरे वे जो तार्किक होते हैं और दिमाग से फैसले लेते हैं। मेरी दुविधा यह है कि मैंने जीवन भर हर फैसला लेने से पहले केवल अपने दिमाग की सुनी है। कल मुझे पहली बार यह लगा कि एक बार मुझे अपने दिल की भी सुननी चाहिए।"

मैं नन्दन की विडम्बना को समझ सकता था। उनके निर्णय का समर्थन करते हुए मैंने उनसे कहा – "कल्पना ने कल मुझसे एक बात कही थी जिससे मैं पूर्णतः सहमत हूँ –

‘अपनी खुशी का ख्याल रखने की जिम्मेदारी हमारी सबसे बड़ी जिम्मेदारी होती है, फिर चाहे वह खुशी दूसरों के हित में कार्य करने से मिलती हो या अपने लिए जीने में।’ आपने अपना सारा जीवन केवल दूसरों के हित को ध्यान में रखकर ही व्यतीत किया है। यदि आप अपना आगे का जीवन स्वयं के लिए जीना चाहते हैं तो उसमें किसी को भी आपसे कोई शिकायत नहीं होगी।”

नन्दन – “मुझे इस बात की चिंता नहीं है कि मेरे इस फैसले से मेरे प्रति वनवासियों के रवैये में क्या बदलाव आएगा। अगर हम हर फैसला लेने से पहले इस बात की चिंता करने लगे कि हमारा समाज हमारे बारे में क्या सोचेगा, तो जीवन भर बस चिंता ही करते रह जाएँगे। लेकिन हमें हमेशा यह याद रखना चाहिए कि हमारा हर फैसला हमारे जीवन को एक बिल्कुल नई दिशा में लेकर जा सकता है, इसलिए हमें कोई भी फैसला लेने से पहले यह सोच लेना चाहिए कि वह हमारे जीवन में क्या बदलाव लेकर आ सकता है।”

“भविष्य में क्या होगा इसका तो हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं। इस बात का क्या भरोसा है कि हमारे निर्णयों का प्रभाव वैसा ही होगा, जैसा हम सोच रहे हैं?” – मैंने पूछा।

नन्दन – “तुम सही कहते हो, अलंकार। भविष्य में क्या होगा यह अनुमान लगाना असंभव है। लेकिन हमारा भविष्य दो चीज़ों से मिलकर बनता है – एक हमारे कर्म और दूसरा हमारा भाग्य। अपने भाग्य को काबू करना भले ही हमारे वश में न हो, लेकिन अपने कर्मों के जरिए हम अपने भविष्य की दिशा बदल सकते हैं।”

हमारी बातों का सिलसिला काफी देर तक चलता रहा, किन्तु नन्दन किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाए। नन्दन के कुछ विचार अति प्राचीन थे, जिस कारण मेरे लिए उन्हें समझना थोड़ा मुश्किल था, परन्तु उनसे बात करने में मुझे एक अभूतपूर्व आनंद की अनुभूति हो रही थी। कुछ देर तक वार्तालाप करने के बाद, जब हमें यह आभास हुआ कि कल्पना को गए हुए बहुत समय बीत चुका था, तो हमें उसकी चिंता सताने लगी। दिन के दूसरे पहर का आरम्भ हो चुका था और पूरा वातावरण प्रकाश से भर चुका था, लेकिन तब भी चारों ओर भयानक सन्नाटा था – जैसे किसी तूफ़ान से पहले की शांति हो। कुछ देर बाद उस सन्नाटे को चीरती हुई हमें पंखों के फड़फड़ाने की ध्वनि सुनाई दी, और देखते ही देखते सकपकाती हुई कल्पना आकर हमसे कुछ दूर गिर पड़ी।

“तुम ठीक तो हो?” – नन्दन भागकर कल्पना की ओर गए और चिंतित स्वर में उससे पूछा। उनके पीछे-पीछे मैं भी कल्पना की ओर दौड़ा। कल्पना किसी सूखे हुए पत्ते की तरह धरती पर पड़ी काँप रही थी। उसके शरीर पर जगह-जगह चोटों के घाव थे।

कल्पना ने धीरे से अपनी आँखें खोलकर कँपकपाते हुए स्वर में कहा – “चिंता मत करिए नन्दन – मैं इतनी आसानी से आपका पीछा नहीं छोड़ने वाली हूँ।”

ऐसी अवस्था में भी कोई हास्यपूर्ण कैसे हो सकता है, यह सोचकर मैं अचंभित था। कल्पना की दयनीय अवस्था देखकर नन्दन की आँखों में आँसू आ गए और वह दबे हुए स्वर में कल्पना से बोले – “तुम्हारी इस हालत के लिए मैं जिम्मेदार हूँ। कल तुम्हारे लाख कहने पर भी मैंने तुम्हें रात में चिन्तामणि जी की खोज में जाने से रोक लिया था। अगर मैंने तुम्हारी बात सुन ली होती तो आज तुम्हारी यह हालत न होती।”

कल्पना ने कराहते हुए कहा – "ऐसा नहीं है नन्दन। भविष्य को भला कोई देख सकता है क्या? कल निर्णय लेते वक़्त आपके पास जितनी जानकारी थी, उसके अनुसार आप ने बहुत ही उम्दा निर्णय लिया था। अगर मैं कल रात अँधेरे में ही चली गई होती तो शायद चिन्तामणि जी की कोई ख़बर लाना संभव नहीं हो पाता, लेकिन दिन के उजाले में घने कोहरे के बावजूद मैं चिन्तामणि जी को ढूँढकर उनसे बात करने में सफल रही। वह काफी परेशान लग रहे थे। उन्होंने मुझे बताया कि यहाँ से लगभग एक कोस दूर, पूर्व दिशा की ओर, विचित्र नदी के उस पार एक बाग़ है जहाँ सारे मवेशी दोपहर में चरने जाते हैं। अगर हम समय पर वहाँ पहुँच जाएँ तो उन्हें वापस लेकर आने की कोशिश कर सकते हैं। मैं कुछ देर और वहाँ रुककर उनसे बात करना चाहती थी, लेकिन उन्होंने मुझे चेताया कि वहाँ और समय बिताने में खतरा हो सकता है। वापस लौटते वक़्त मुझे यहाँ से लगभग ढाई-सौ गज पहले नदी के ऊपर एक पुल दिखाई दिया। यह जानने के लिए कि क्या हमारे लिए वन में पुल के रास्ते प्रवेश करना संभव होगा, जब में पुल के पास पहुँची तो अचानक मुझ पर नीचे से पत्थर बरसने लगे। कोहरे की वजह से मुझे हमलावर दिखाई नहीं दिए, लेकिन मैं अपनी जान बचाकर वहाँ से भाग आई। अगर उस वन के वासियों को इस बात का शक हो गया कि हम चिन्तामणि जी को छुड़ाने का प्रयास कर रहे हैं, तो हो सकता है कि वे पहरा और कड़ा कर दें। हमारे पास बस यही एक मौका है – हमें तुरंत उस बाग़ के निकट जाकर चिन्तामणि जी को वहाँ से लाना पड़ेगा।"

यात्रा के मनोरम पड़ावों के दौरान मैंने केवल दर्शक की भूमिका निभाई थी, अब जाकर यात्रा के सबसे कठिन पड़ाव पर मुझे एक प्रतिभागी बनने का अवसर मिला था। कल्पना को इस गंभीर अवस्था में फिर जोखिम उठाना भारी पड़ सकता था, जबकि नन्दन के लिए सहजता से नदी पार करना संभव नहीं था, अतः मैंने नन्दन को कल्पना के साथ वहीं रुककर उसकी देखभाल करने का सुझाव दिया और स्वयं विचित्र वन जाकर चिन्तामणि जी को लेकर आने का प्रस्ताव रखा। कल्पना और नन्दन ने पहले तो मेरे सुझाव का विरोध किया, परन्तु कुछ देर सोच-विचार करने के बाद उन्होंने मेरी बात मान ली क्योंकि हमारे पास कोई बेहतर विकल्प नहीं था।

दोनों को वहीं छोड़कर मैं नदी के मटमैले पानी में उतर गया। नदी की चौड़ाई बहुत कम थी, उसमें जल का वेग भी अधिक न था, परन्तु उसका जल अवर्णनीय चिपचिपाहट और असहनीय दुर्गन्ध से परिपूर्ण था। उपलब्ध विकल्पों के अभाव में मैंने तुरंत नदी पार करने का निर्णय लिया। कुछ ही क्षणों में नदी के दक्षिणी तट पर पहुँचकर मैंने देखा कि नदी किनारे लकड़ियों की एक बाड़ बनी हुई थी। मैंने ऐसी संरचना कभी नहीं देखी थी, परन्तु वह समय उस उत्कृष्ट कलाकृति की सराहना करने हेतु उपयुक्त न था। मैंने देखा कि उस बाड़ को पार कर के विचित्र वन के भीतर प्रवेश करना संभव नहीं था। बाड़ के स्तंभों के बीच में इतनी जगह थी कि एक ओर से दूसरी ओर देखा जा सकता था, परन्तु घने कोहरे के कारण बस कुछ ही दूर तक दिखाई पड़ रहा था। मैंने तय किया कि मैं पहले बगीचे तक की दूरी नदी के रास्ते तय करूँगा और आवश्यकता पड़ने पर विचार करूँगा कि वन में कैसे प्रवेश करना है। मैंने वापस नदी में उतरकर पूर्व दिशा में तैरना आरम्भ किया। कुछ देर तक तैरते रहने के बाद मैं उस पुल के निकट पहुँच गया जिसके बारे में कल्पना ने बताया था। कल्पना ने वहाँ कड़ा पहरा होने की बात कही थी, अतः

मैं बिना कोई शोर किए चुपचाप उस पुल के नीचे से निकल गया। कुछ देर और तैरने के बाद, मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ मुझे भेड़-बकरियों की आवाजें सुनाई देने लगीं। मैंने यह अनुमान लगाया कि जिस स्थान पर कल्पना ने चिन्तामणि जी के मिलने की सम्भावना जताई थी, मैं उस स्थान के निकट पहुँच चुका था। मैं नदी से निकलकर तट पर स्थित लकड़ी की बाड़ के निकट पहुँचा और जोर से चिन्तामणि जी को पुकारा। मेरी पुकार सुनकर भेड़-बकरियों में भगदड़ मच गई। मुझे अभी भी दूसरी ओर घने कोहरे के अलावा कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, किन्तु शोर-शराबे से यह स्पष्ट था कि वहाँ मेरी उपस्थिति से मवेशी घबरा गए थे। कुछ ही क्षणों में घने कोहरे के बीच से चिन्तामणि जी के आकार की एक परछाई मुझे अपनी ओर भागती हुई दिखाई दी। जब चिन्तामणि जी बाड़ के निकट आ गए, तब मैंने गौर किया कि वह पहले से अलग दिखाई दे रहे थे – उनके शरीर से उनके घने-घुँघराले बाल अनुपस्थित थे और बिना बालों के वह अपने ही निर्जीव ढाँचे जैसे दिख रहे थे। मुझे देखकर उनके भयभीत चेहरे पर आशा की एक लहर दौड़ गई।

इससे पहले कि मैं चिन्तामणि जी से कुछ कह पाता, मुझे उनके पीछे की ओर से एक विशाल बैल की छाया-आकृति हमारी ओर आती दिखाई दी। मैंने घबराकर चिन्तामणि जी से पीछे देखने को कहा। चिन्तामणि जी ने जब पलटकर देखा तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने मुझे बताया कि वह बैल उनका मित्र है और वहाँ से निकलने में हमारी सहायता करेगा। चिन्तामणि जी के संकेत करते ही बैल ने दौड़कर अपने मतबूत सींघों से लकड़ी की बाड़ पर प्रहार किया और उसके एक भाग को ध्वस्त कर दिया। वहाँ पर एक प्रवेशमार्ग बन गया जिससे चिन्तामणि जी के लिए विचित्र वन की सीमा को लाँघना संभव था। चिन्तामणि जी ने उस बैल से भी हमारे साथ चलने का अनुरोध किया परन्तु बैल ने उनके निमंत्रण को आदरपूर्वक अस्वीकार कर दिया। बस फिर क्या था, चिन्तामणि जी वन की सीमा को लाँघकर नदी के तट पर आ गए और मैंने उन्हें सहारा देते हुए नदी के दूसरे छोर तक तैरने में सहायता प्रदान की। देखते ही देखते हम दोनों वापस नदी के उत्तरी छोर पर पहुँच गए।

कहा जाता है कि भय सरल से सरल परिस्थिति को कठिन बना देता है और साहस कठिन से कठिन परिस्थिति को सरल। यह कोई संयोग नहीं था कि जिस वन को डरावना समझकर सारे जीव वहाँ जाने से कतराते थे, हम उस वन की सीमा से बिना किसी खरोंच के निकल आए थे। किन्तु खतरा पूर्णतः टला नहीं था। अभी हमें कल्पना और नन्दन तक पहुँचने के लिए धरती के रास्ते लगभग एक कोस की दूरी तय करनी थी।

# अध्याय दस – विचित्र जीवों का रहस्य

सौभाग्यवश, कल्पना और नन्दन की ओर वापस आते समय मुझे और चिन्तामणि जी को किसी भी अप्रत्याशित विपत्ति का सामना नहीं करना पड़ा। जब हम दोनों उनके निकट पहुँचे, तो हमें सही-सलामत देखकर वे दोनों प्रफुल्लित हो उठे। कल्पना अब भी लम्बी उड़ान नहीं भर सकती थी, परन्तु विश्राम करने के पश्चात उसकी अवस्था पहले से बेहतर थी। दिन के तीसरे पहर का प्रारम्भ हो चुका था, अतः हमने यह निर्णय लिया कि अंधकार होने से पहले हम वापस संधि सरोवर के दक्षिणी तट पर पहुँचने का प्रयास करेंगे। वह क्षेत्र हमारा देखा हुआ था और विचित्र वन से सुरक्षित दूरी पर भी था। चिन्तामणि जी के चेहरे पर एक रहस्यमयी निराशा छाई हुई थी। ऐसा लगता था जैसे उन्हें विचित्र वन से सुरक्षित निकल आने की कोई प्रसन्नता नहीं थी।

विचित्र नदी से संधि सरोवर की दूरी हम चलकर तय करने लगे। हालाँकि कल्पना को बहुत अधिक चोटें आई थीं, उसका उत्साह देखने योग्य था। वह बीच-बीच में उड़ान भरकर हमसे दूर निकल जाती और फिर किसी वृक्ष की शाखा पर बैठकर हमारे वहाँ आने की प्रतीक्षा करती। जब हमारे साथ होती तो निरन्तर अपनी बातों से हमारा उत्साह बढ़ाने का भी प्रयास करती। उसकी उत्सुकता उसके व्यवहार में स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी। अपने उत्तरदायित्व को बखूबी निभाने के बाद, वह हमसे विदा लेकर सुन्दरनगर में बसने के लिए तत्पर थी। चिन्तामणि जी ने रास्ते भर एक शब्द भी नहीं बोला। वह बार-बार पीछे पलटकर ऐसे देख रहे थे जैसे उन्हें विचित्र वन की दिशा से किसी आक्रमण की आशंका हो। कल्पना और नन्दन ने उनसे कई बार बातचीत करने का प्रयास किया, परन्तु उन्होंने कोई भी उत्तर नहीं दिया। उनका यह बरताव उनके जैसे तेजस्वी नेता के प्राकृतिक स्वभाव से बिल्कुल विपरीत था।

दिन का आखिरी पहर समाप्त होने से कुछ देर पहले हम संधि सरोवर के दक्षिणी तट पर स्थित एक वृक्ष के निकट पहुँच गए। दिन भर की भाग-दौड़ के कारण हम सब थके हुए थे। कुछ देर प्रतीक्षा करने के उपरान्त कल्पना बोली – “चिन्तामणि जी, यहाँ से उत्तर दिशा में कुछ दूरी पर सुन्दरनगर नाम का वन है। मैंने यह निश्चय किया था कि आपको विचित्र वन से ढूँढ लाने के बाद मैं सुन्दरनगर में बस जाऊँगी। वहाँ की जीवन-शैली देखने के बाद अब निराला वन में मेरा मन नहीं लगेगा। कल जब मैं पहली बार सुन्दरनगर गई तब मुझे समझ में आया कि क्यों आप हमेशा पशुओं और पक्षियों के लिए अलग-अलग कानून बनाने की बात करते हैं। अब मुझे आपकी दूरदर्शिता समझ आने लगी है।”

कल्पना की आँखों में एक चमक थी। चिन्तामणि जी से उत्तर न मिलने पर भी वह निराश नहीं हुई और थोड़ी देर बाद फिर बोली – “चिन्तामणि जी, आप इतने मायूस क्यों हैं? माना कि आप थोड़े दिन अपने वन एवं परिवार से दूर थे, लेकिन कल दोपहर तक तो आप वापस अपने प्रियजनों के साथ होंगे।”

कल्पना की बातें सुनकर चिन्तामणि जी ने एक गहरी साँस ली और कहा – “मेरी निराशा का कारण कुछ और ही है।”

हम तीनों में से किसी को समझ में नहीं आया कि वह ऐसा क्यों कह रहे थे। थोड़ी देर कुछ सोचने के बाद चिन्तामणि जी फिर बोले – "अच्छा कल्पना! इससे पहले कि कल तुम सुन्दरनगर के लिए रवाना हो, मैं तुम तीनों को कुछ बताना चाहता हूँ। हो सकता है यह जानकारी सुन्दरनगर के पक्षियों के भी कुछ काम आ जाए। जो मैं तुम्हें बताने वाला हूँ उस पर तुम्हें भी यकीन नहीं होगा – जैसे पहले मुझे नहीं हुआ था।"

यह सुनकर मैंने पहले कल्पना की ओर देखा और फिर नन्दन की ओर। उन दोनों के चेहरे पर भी जिज्ञासा स्पष्ट दिखाई दे रही थी। हम तीनों ही विचित्र वन का रहस्य जानने के लिए उत्सुक थे।

चिन्तामणि जी – "जब मैंने पहली बार विचित्र वन के प्राणियों को देखा तो मेरे मन में कई प्रश्न थे, लेकिन उन्होंने मेरे किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। विचित्र वन पहुँचकर उन्होंने मुझे अन्य भेड़-बकरियों के साथ एक कारावास में डाल दिया, लेकिन वहाँ के निवासियों से भी मुझे अपने सवालों का कोई जवाब नहीं मिला। फिर अगली सुबह जब हमें चरने के लिए मैदान में ले जाया गया, तब अपने झुंड से कुछ दूरी पर मैंने एक बैल को चरते हुए देखा। उसके चेहरे पर एक अद्‌भुत तेज था। मैंने उस बैल से बातचीत करना शुरू किया और अपने प्रश्न उसके समक्ष रखे। उसने मुझे अपना नाम चिरकालिक बताया। फिर उसने मुझे यह जानकारी दी कि मेरा अपहरण मनुष्यों द्वारा किया गया था।"

नन्दन, जो हम चारों में सबसे अधिक आस्तिक थे, यह सुनकर एकदम गंभीर हो गए और चिन्तामणि जी से बोले – "यह कैसे संभव है? जिस शक्ति ने हम सबका निर्माण किया है, हमारा अपहरण करने की भला उसे क्या आवश्यकता पड़ सकती है?"

चिन्तामणि जी – "शुरुआत में तो मुझे भी इस बात का बिल्कुल यकीन नहीं हुआ, लेकिन चिरकालिक के साथ सवाल-जवाब का सिलसिला चलता रहा और वह एक के बाद एक मेरे सारे सवालों के जवाब देता रहा। धीरे-धीरे मुझे उसकी बातों पर यकीन होने लगा। जिन जीवों को वनों में विचित्र जीव कहकर बुलाया जाता है, वे असल में मनुष्य हैं। जिन मनुष्यों को हम पूजते हैं, वे ऐसे निकलेंगे, मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था।"

यह सुनकर नन्दन के चेहरे के हाव-भाव बदल गए। वह उदासीन भाव से सरोवर की ओर देखने लगे, जैसे किसी गहन विचार में डूब गए हों। वहीं कल्पना और मैं एकटक चिन्तामणि जी की ओर देख रहे थे और उनसे उनका बाकी का वृत्तान्त सुनने के लिए आतुर थे।

चिन्तामणि जी ने एक और गहरी साँस ली और बोले – "मनुष्य एक प्रकार का पशु ही है जिसकी सोचने की क्षमता बाकी जीव-जंतुओं से बहुत अधिक है। आज से हज़ारों वर्ष पहले तक मनुष्य भी साधारण पशुओं की तरह वनों में विचरण किया करते थे। फिर धीरे-धीरे मनुष्य प्रगति करते गए और बाकी जीव-जंतुओं से बहुत आगे निकल गए। सौ सालों के समूह को मनुष्य शताब्दी कहते हैं। उनका मानना है कि अभी सत्ताईसवीं शताब्दी चल रही है। आज से लगभग छः सौ वर्ष पहले – इक्कीसवीं शताब्दी में – मानव जाति अपने शिखर पर थी। सारे संसार पर सदियों से उनका एकछत्र राज था। अपनी सोचने-समझने की क्षमता का इस्तेमाल कर के मनुष्यों ने ऐसे-ऐसे उपकरण बना लिए

थे जिनकी सहायता से वे धरती पर चीते से भी तेज़ गति से भाग सकते थे, आसमान में बाज़ से ऊँचा उड़ सकते थे और समुद्र में व्हेल मछली से भी अधिक सहजता से तैर सकते थे। वे बड़े-बड़े पहाड़ों को आसानी से चकनाचूर कर सकते थे, नदी के पानी को रोक सकते थे और रात में दोपहर से भी अधिक रोशनी कर सकते थे। मनुष्य के पास अपने एक इशारे पर पूरे विश्व का सर्वनाश करने की क्षमता थी।"

कल्पना – "चिन्तामणि जी, क्या मनुष्य के ऐसे रुतबे के कारण ही अन्य प्राणियों ने मनुष्य को सर्वशक्तिमान और सबकी किस्मत का विधाता मानना शुरू किया होगा?"

चिन्तामणि जी – "मुझे तो ऐसा ही लगता है कल्पना। कहा जाता है कि सफलता की मदहोशी में मनुष्य अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने लगे, और अपनी जरूरतों के लिए उन्होंने इस विश्व के बाकी सारे प्राणियों और वस्तुओं का शोषण करना शुरू कर दिया। नदियों को मनुष्यों ने पहले गन्दा किया और फिर सुखा डाला। वनों को पहले काटा और फिर रेगिस्तान में तब्दील कर दिया। हवा में धीरे-धीरे विष घोलते चले गए। उन्होंने जमीन खोदकर और समुद्रों की गहराई में जाकर धरती से सारे खनिज पदार्थ निकाल डाले। मनुष्यों के ऐसे हस्तक्षेप करने से पहले, हर साल संतुलित रूप से छः ऋतुएँ हुआ करती थीं। फिर एक-एक कर के बाकी सारे मौसम सिमटते चले गए और साल भर केवल गर्मी पड़ने लगी। धीरे-धीरे इस पृथ्वी के सारे संसाधन कम होते चले गए और केवल मानव जाति का ही नहीं बल्कि इस संसार के सारे जीव-जंतुओं का अस्तित्व खतरे में आ गया। कई वर्षों से बढ़ रही मनुष्यों की जनसंख्या धीरे-धीरे सिमटने लगी और मानव सभ्यता का पतन होने लगा। बताया जाता है कि इक्कीसवीं शताब्दी के अंत तक परिस्थिति ऐसी हो गई थी कि सभी विशषज्ञों को यह लगने लगा कि जल्द ही इस विश्व से सारे जीव-जंतुओं का अंत हो जाएगा।"

"अगर यह सब सच है तो फिर आज छः सौ साल बाद भी इस दुनिया में इतनी अधिक मात्रा में जीव-जंतु कैसे बचे हैं?" – नन्दन ने अपने विचारों के सरोवर से बाहर निकलते हुए गंभीर स्वर में पूछा। कल्पना और मैं भी इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए उत्सुक थे।

# अध्याय ग्यारह – मानवता का कड़वा सच

चिन्तामणि जी – “जब यह विश्व विनाश की तरफ बढ़ता नज़र आने लगा और मानव सभ्यता समाप्ति की कगार पर आ पहुँची, तब मनुष्यों ने अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए एक नई तरकीब निकाली। उन्होंने तय किया कि वे स्वयं भूमि के सिर्फ एक सीमित हिस्से में ही रहा करेंगे और एक बड़े हिस्से में पेड़-पौधे लगाकर प्रकृति और उसके संसाधनों को फिर से पुनर्जीवित करेंगे। जहाँ से तुमने मुझे बचाया, वह उनके राज्य की उत्तरी सीमा है। हर साल में एक बार, एक-दो मनुष्य बाकी सब जीव-जंतुओं से छिपकर सारे क्षेत्रों में वहाँ की व्यवस्था देखने जाते हैं। ऐसी ही एक गश्त के दौरान उस सुबह दो मनुष्यों ने मुझे मैथिली नदी के तट के पास टहलते हुए देख लिया। उस सुबह गहरी सोच में डूबा हुआ मैं नदी किनारे चलते-चलते निराला वन की बाहरी सीमा के निकट कब पहुँच गया, मुझे खुद पता नहीं चला। मुझे अकेला देखकर न जाने उन्हें क्या सूझी – उन्होंने मुझे उठा लिया और अपने साथ ले गए। मैंने खुद को छुड़ाने की भरपूर कोशिश की, लेकिन वे बहुत बलशाली थे। उस समय मुझे लगा कि वे किसी दुर्लभ प्रजाति के शक्तिशाली वानर हैं। विचित्र वन पहुँचकर जो मैंने देखा उसे शब्दों में कहना मुश्किल है। वह मनुष्यों का एक नया नगर है जिसमें रहते हुए उन्हें अभी पचास साल भी नहीं हुए हैं, लेकिन उन्होंने उसके पूरे वातावरण का सर्वनाश कर दिया है। नदी किनारे से वहाँ का वातावरण तो तुम तीनों ने भी देखा होगा – नगर के जितना भीतर घुसते जाते हैं, कोहरा उतना ही घना होता चला जाता है। वन के भीतर की झीलें और नदियाँ, सीमा पर बहने वाली नदी से भी कई गुना ज्यादा प्रदूषित हैं। उस वातावरण में साँस लेने के लिए भी मुझे संघर्ष करना पड़ रहा था। कोई जीव अगर भटकते हुए उनके नगर के पास आ जाते हैं, तो मनुष्य उन्हें पकड़कर वहीं रख लेते हैं ताकि वे औरों को मनुष्य के रहस्य के बारे में न बता पाएँ। मनुष्यों को आशा है कि इस बार वे अपने प्रकोप को सिर्फ एक छोटे इलाके में सीमित रखकर, जरूरत पड़ने पर दूसरे इलाके में स्थानांतरित हो सकते हैं।”

कल्पना – “पर चिन्तामणि जी, विश्व के सबसे ताकतवर प्राणी की ऐसी दुर्गति कैसे हो गई?”

चिन्तामणि जी – “मनुष्यों के पतन के भी वही कारण थे जो आजतक अधिकांश सभ्यताओं और राज्यों के पतन के कारण रहे हैं – पहला लोभ और दूसरा अभिमान। जब मनुष्यों ने विकास के पथ पर चलना शुरू किया था तो वे सारे संसाधनों का इस्तेमाल अपनी जरूरत के अनुसार ही किया करते थे। धीरे-धीरे उनका लालच और घमंड दोनों बढ़ने लगे। उन्हें लगने लगा कि वे इस विश्व की सारी वस्तुओं का इस्तेमाल बिना किसी रुकावट या जोखिम के अपने निजी फ़ायदे के लिए कर सकते हैं। तुम्हें शायद यह जानकार हैरानी होगी कि उत्तरी छोर पर रहने वाले मनुष्य ग्रामीण जीवन-शैली जीते हैं और अभी भी वनों के निकट होने के कारण प्रकृति से कुछ हद तक जुड़े हुए हैं। चिरकालिक ने मुझे बताया कि जैसे-जैसे दक्षिण दिशा में जाते हैं, मनुष्यों की जीवन-शैली और आधुनिक होती जाती है – दक्षिण में न तो पेड़-पौधों का कहीं अता-पता है, न पशु-पक्षियों का। मुझे और चिरकालिक को बातचीत करने के लिए इतना समय मिल

सका क्योंकि उत्तरी नगरों के मनुष्य अन्य जीवों का उपयोग केवल जरूरत पड़ने पर ही करते हैं – बैलों को खेती करने के लिए साल में सिर्फ एक-दो बार काम पर लगाया जाता है और भेड़ों को उनके बालों से वस्त्र बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। मेरे बाल निकाल देने के बाद उन्होंने मुझे चरने के लिए बाकी मवेशियों के साथ छोड़ दिया था। चिरकालिक ने मुझे यह भी बताया कि दक्षिणी नगरों के मनुष्य अपने अधिकतर कार्य बिजली या तेल से चलने वाले धातु के उपकरणों की सहायता से करते हैं। अधिकतर ऐसे उपकरणों ने मनुष्यों के जीवन को तो सरल बना दिया है, लेकिन वे पर्यावरण पर बहुत बुरा प्रभाव डाल रहे हैं। कहा जाता है कि मनुष्य द्वारा दक्षिणी प्रान्तों में इतना आधुनिकीकरण किया जा चुका है कि मनुष्य दिन भर अपने उपकरणों के साथ ही रहते हैं और एक-दूसरे के साथ समय व्यतीत करना बिल्कुल भी पसंद नहीं करते।"

कल्पना – "ऐसा कैसे संभव है? कोई जीव अपने प्राकृतिक वातावरण से दुश्मनी लेकर केवल उपकरणों के साथ अपना वक़्त कैसे बिता सकता है?"

चिन्तामणि जी – "यह तुमने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है कल्पना। इस प्रश्न का उत्तर ही पिछले दो दिनों से मेरी निराशा का कारण रहा है। ऐसा कहा जाता है कि इस विश्व में भेद-भाव की शुरुआत मनुष्यों ने ही की थी। एक समय हुआ करता था जब विश्व के सारे प्राणी आपस में मिल-जुल कर रहते थे। फिर मनुष्य खुद को बाकी प्राणियों से बेहतर समझने लगे और उन्होंने अन्य सभी जीव-जंतुओं पर अत्याचार करने शुरू कर दिए। मनुष्य इस संसार के पहले ऐसे जीव हैं, जो केवल वहाँ पर नहीं रुके। धीरे-धीरे मनुष्यों ने अपनी ही प्रजाति के अन्य मनुष्यों को भी भेदभाव का शिकार बनाना शुरू कर दिया। कभी त्वचा के रंग के आधार पर, तो कभी शक्ल-सूरत के आधार पर। कभी कद-काठी के आधार पर, तो कभी उनकी चाल-ढाल के आधार पर। कभी आयु के आधार पर, तो कभी काम कर पाने की क्षमता के आधार पर। यहाँ तक कि लिंग के आधार पर भी। मानवजाति भेद-भाव के दलदल में धँसती चली गई और लगभग सभी मनुष्य अपने से अलग दिखने वाले अन्य मनुष्यों से धीरे-धीरे घृणा करने लगे।"

"यकीन नहीं होता कि ऐसे प्राणी को ईश्वर मानकर सदियों से विश्व भर में पूजा जाता है।" – कल्पना ने कहा।

चिन्तामणि जी – "मनुष्यों द्वारा किए गए भेद-भाव की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। प्रकृति द्वारा बनाए गए अंतरों की वजह से भेद-भाव करने के सारे तरीके आज़मा लेने के बाद, उन्होंने भेदभाव करने के कृत्रिम तरीके बनाना शुरू कर दिया। पहले धर्म, फिर जातियाँ, और आगे चलकर अमीरी-गरीबी, सामाजिक प्रतिष्ठा, विचारधारा इत्यादि। धीरे-धीरे एक ऐसा समय आ गया जब भेद-भाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया और समाज में सब मनुष्य अपने अलावा हर किसी से घृणा करने लगे। कोई किसी को अपने से तुच्छ समझकर उससे दूरी बढ़ा लेता, तो कोई खुद के साथ भेद-भाव किए जाने के डर से। एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में मनुष्य बाकी सब भूल गए। मानव समाज से आपसी विश्वास घटता चला गया और सारे मनुष्य इतने संशयात्मक हो गए कि अपनी धारणाओं के विरुद्ध कोई भी बात सुनने से घबराने लगे। परिणामस्वरूप मनुष्यों के जीवन से रिश्तों और आपसी वार्तालाप का महत्त्व समाप्त होता चला गया और उनके निकटतम सम्बन्धियों की जगह उनके उपकरणों ने ले ली। आधुनिक उपकरण मनुष्यों से

बातें कर सकते हैं और उन्हें दुनिया भर की ख़बरें सुना सकते हैं – लेकिन वे उपकरण हर मनुष्य को केवल वही बताते हैं, जो वह सुनना चाहता है। अब सब मनुष्य एक-दूसरे का नज़रिया समझने से भी कतराते हैं और दुनिया को बिल्कुल वैसे देखते हैं जैसे वे देखना चाहते हैं।"

चिन्तामणि जी की बातें सुनकर एक ओर जहाँ कल्पना बहुत उत्साहित थी, वहीं दूसरी ओर नन्दन एक बार फिर अपने विचारों में कहीं खो गए थे। मेरे मन में भी काफी सारे प्रश्न थे, परन्तु चिन्तामणि जी जैसे वरिष्ठ नेता के सामने मैं कोई भी प्रश्न पूछने से घबरा रहा था। शायद मेरे चेहरे पर असमंजस स्पष्ट रूप से झलक रहा होगा क्योंकि चिन्तामणि जी ने अपना अगला वाक्य मेरी ओर संबोधित किया – "तुम थोड़ा परेशान लग रहे हो अलंकार। कुछ कहना चाहते हो तो कहो।"

"कुछ नहीं चिन्तामणि जी, मैं तो बस यह सोच रहा था कि यदि मनुष्यों की सोचने-समझने की क्षमता असल में अन्य सब जीव-जंतुओं से अधिक है, तो क्या उन्हें अपने तौर-तरीकों की कमियाँ स्वयं नहीं दिखाई देती होंगी?" – मैंने मासूमियत से पूछा।

चिन्तामणि जी हँस पड़े और बोले – "अपनी गलतियाँ किसको दिखाई देती हैं?" फिर बोलते-बोलते अचानक गंभीर हो गए – "अब मुझको ही ले लो। वन-प्रमुख बनने की लालसा में, मैं अपने ही वन के पशु और पक्षियों के बीच में दूरियाँ बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। शुक्र है कि मनुष्य मुझे उठाकर अपनी दुनिया में ले गए, जहाँ मुझे एक ऐसे भविष्य के दर्शन हुए जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। यदि मुझे यह अनुभव नहीं होता, तो अपनी राजनीतिक जीत की लालसा में मुझसे बड़ा भारी पाप हो जाता। अब जाकर मुझे समझ में आया है कि विविधता का एक उन्नतिशील समाज में कितना महत्त्व होता है।"

यह कहते हुए उनकी आँखों में आँसू आ गए। उनके चेहरे पर कष्ट स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहूँ, तभी कल्पना ने परिस्थिति को संभालते हुए कहा – "चिन्तामणि जी, हमें जीवन में नए अनुभव इसलिए ही तो होते हैं ताकि हम उनसे कुछ नया सीखकर आगे बढ़ सकें। आपकी इसमें कोई गलती नहीं है। किसी भी समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले नेता, उस समाज का आईना होते हैं। आप तो वही करने का प्रयास कर रहे थे जो हमारे वनवासी चाहते थे।"

चिन्तामणि जी से मनुष्यों का इतिहास सुनकर हम तीनों स्तब्ध थे। बस हमें यह समझ में नहीं आ रहा था कि मनुष्य को एक शैतान की भाँति याद करने के स्थान पर, हमने उसे भगवान का दर्जा कैसे दे दिया था। कुछ देर और मनुष्यों के बारे में चर्चा करने के बाद हमने उस वार्तालाप को वहीं विराम देकर रात्रि-विश्राम करने का निश्चय किया और यह तय किया कि सवेरा होते ही हम तीनों कल्पना से विदा लेकर निराला वन की ओर प्रस्थान करेंगे।

# अध्याय बारह – यात्रा की समाप्ति

अगली सुबह उठकर जब हम वापसी यात्रा की तैयारी कर रहे थे, तब उत्साह से भरी हुई कल्पना ने हमें बताया कि रात भर सोच-विचार करने के बाद उसने सुन्दरनगर न जाकर हमारे साथ निराला वन वापस चलने का निर्णय लिया है। विचित्र वन की दुर्दशा में शायद उसे सुन्दरनगर के भविष्य की एक झलक दिखाई दे गई थी। चिन्तामणि जी ने कल्पना से एक बार फिर अपने निर्णय पर विचार करने को कहा, परन्तु वह सुन्दरनगर की चकाचौंध का त्याग कर के हमारे साथ चलने का मन बना चुकी थी।

वहीं दूसरी ओर नन्दन ने भी अपने विकल्पों पर विचार करने के पश्चात यह निर्णय लिया कि वह हमारे साथ निराला वन वापस न आकर, उस वाटिका की खोज में जाएँगे जिसके बारे में उन्हें तोते ने बताया था। उनके इस निर्णय से हम सभी को हैरानी तो बहुत हुई, किन्तु हमें इस बात में कोई संदेह नहीं था कि नन्दन ने अपना निर्णय भली-भाँति सोच-विचार करने के बाद ही लिया होगा।

नन्दन से विदा लेकर कल्पना और मैं, चिन्तामणि जी के साथ निराला वन की ओर लौट आए। रास्ते में चिन्तामणि जी ने हमें मनुष्यों के बारे में और भी कई रोचक किस्से सुनाए। जब हम निराला वन पहुँचे तो सभी वनवासियों की प्रतिक्रिया देखने योग्य थी। उनके उत्साह को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि वे हमारे सही-सलामत वापस आने की उम्मीद छोड़ चुके थे। उस शाम चिन्तामणि जी की प्रतिष्ठा में एक समारोह का आयोजन किया गया जिसमें लगभग सभी वनवासी उपस्थित थे। चारों तरफ चिन्तामणि जी की जय-जयकार हो रही थी। यदि उस समय वन-प्रमुख के चुनाव करा लिए गए होते तो चिन्तामणि जी को हराना इस संसार की किसी भी शक्ति के लिए असंभव साबित होता, परन्तु जब चिन्तामणि जी मंच पर आए तो उन्होंने इस घोषणा से सबको हैरत में डाल दिया कि वह सक्रिय राजनीति से सन्यास लेने का मन बना चुके थे। अगले कुछ दिनों तक वह हर शाम उसी मंच पर बैठकर वनवासियों को मनुष्यों के किस्से सुनाने लगे।

मनुष्यों के इतिहास और इरादों के बारे में जानकर सभी वनवासी चिंतित थे, अतः वन के भविष्य पर चिंतन करने के लिए सभी वरिष्ठ नेताओं की एक बैठक बुलाई गई। बैठक में चिन्तामणि जी ने कोकिला जी को पुनः वन-प्रमुख चुने जाने का प्रस्ताव रखा, परन्तु मनुष्यों का इतिहास जानने के बाद कोकिला जी भी वन-प्रमुख बनने की अपनी लालसा का त्याग कर चुकी थीं। एक बात पर सभी प्रतिभागी सहमत थे – जिसके पास भी सत्ता आती है, वह देर-सवेर अपनी शक्ति का दुरुपयोग अवश्य करता है। अतः सभा में उपस्थित सभी वरिष्ठ नेताओं की स्वीकृति मिलने के पश्चात वन-प्रमुख के पद को विघटित कर दिया गया और यह निर्णय लिया गया कि वन का संचालन करने के लिए एक सभा का गठन किया जाएगा जिसमें वनवासियों द्वारा चुने गए प्रत्याशी उनका प्रतिनिधित्व करेंगे। उस सभा में सभी प्रजातियों के सदस्य होंगे, जो मिल-जुल कर वन के अहम मुद्दों पर निर्णय लेंगे। बैठक में यह भी तय किया गया कि मनुष्यों से इस संसार की सुरक्षा हेतु, हमें विश्व के सभी जीव-जंतुओं को एकजुट करने का प्रयास करना पड़ेगा। परिणामस्वरूप, निराला वन की सीमाएँ एक बार पुनः अन्य वनों के वासियों के लिए

खोल दी गईं और एक विशेष दल का गठन किया गया जिसको एक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा गया – हर वन में जाकर वहाँ के वासियों को मनुष्यों के बारे में जानकारी देने और भविष्य में आने वाले संभावित खतरों से सचेत करने का। उस दल का नेतृत्व करने का उत्तरदायित्व चिन्तामणि जी को दिया गया। जब कल्पना और मैंने भी दल में सम्मिलित किए जाने की इच्छा प्रकट की, तब हमें भी उसमें शामिल कर लिया गया।

चिन्तामणि जी से मनुष्यों के बारे में और बातचीत करने पर हमें यह मालूम पड़ा कि मनुष्यों में केवल बुराइयाँ ही नहीं थीं, कई अच्छे गुण भी थे। देखा जाए तो धर्म, जाति, राष्ट्र इत्यादि की रचना मनुष्यों ने खुद को एकजुट करने के लिए की थी, न कि आपसी दूरियाँ बढ़ाने के लिए। उनके इरादे प्रारम्भ में पवित्र थे, भले ही उनका परिणाम कुछ भी रहा हो। दक्षिण में विचित्र नगर के अलावा मनुष्यों के और भी अनेक नगर थे और विभिन्न नगरों में रहने वाले मनुष्यों का व्यवहार एक-दूसरे से भिन्न था। चिन्तामणि जी का सामना जिस नगर के मनुष्यों से हुआ था, हमने केवल उन्हीं के व्यवहार और आचरण के आधार पर सब मनुष्यों के बारे में अपनी धारणा बना ली थी। यह भी संभव है कि यदि चिन्तामणि जी किसी दूसरे नगर के मनुष्यों से मिले होते या उन्हें मनुष्यों का इतिहास चिरकालिक बैल के स्थान पर किसी और जीव ने सुनाया होता, तो मनुष्यों के बारे में हम सब की धारणा कुछ और ही होती।

ऐसा कहा जाता है कि बुद्धिमान वे होते हैं जो दूसरों की विफलताओं से भी सीख लेते हैं – वे स्वयं विफल होने की प्रतीक्षा नहीं करते। मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता इस बात की है कि मनुष्यों की कहानियाँ सुनकर अधिकतर जीव उनकी अच्छी प्रथाओं से सीखकर उनका अनुसरण करने का प्रयास कर रहे हैं, और उनकी बुरी प्रथाओं की कड़ी आलोचना कर रहे हैं। मनुष्यों के सत्य का भेद खुल जाने से वन-समाज को एक बहुत बड़ी हानि भी हुई है – लगभग सभी वनवासियों में ईश्वर के प्रति आस्था का भाव समाप्त हो गया है, जिसके कारण वनों में अपराध की घटनाएँ बहुत बढ़ गई हैं। वह ईश्वर-रूपी मनुष्य का भय ही था, जो वनवासियों को तब अपराध करने से रोकता था, जब उन्हें कोई देख नहीं रहा होता था।

हर नए वन में जब चिन्तामणि जी मनुष्यों के इतिहास का वर्णन करते हैं तो उनकी कहानी और अधिक डरावनी होती जाती है। शायद उन्हें स्वयं भी इस बात की अनुभूति न होती हो, परन्तु वह अपनी कहानी के हर संस्करण में छोटे-छोटे किस्से जोड़ते जाते हैं – कभी मनुष्यों द्वारा अल्पसंख्यकों के नरसंहार के बारे में, तो कभी घरेलू हिंसा के बारे में, कभी परमाणु हथियारों के बारे में, तो कभी शौकिया तौर पर पशु-पक्षियों का शिकार करने के बारे में। चिन्तामणि जी से मनुष्यों का इतिहास सुनकर जब वनवासी एक-दूसरे को बताते हैं, तो अक्सर भावनाओं में बहकर वे भी मानवता के किस्से-कहानियों में छोटे-मोटे बदलाव कर देते हैं। कभी-कभी अन्य वनों की यात्रा के दौरान हम वहाँ के वनवासियों से मनुष्यों के बारे में ऐसे-ऐसे किस्से सुनते हैं जिनका सच्चाई से दूर-दूर तक कोई लेना-देना नहीं होता। जब अभी यह हालात हैं, तो पता नहीं हमारी आने वाली पीढ़ियाँ इन कथाओं को अपने असली रूप में कैसे याद रख पाएँगी।

सबसे अधिक आश्चर्यचकित करने वाली बात यह है कि मनुष्यों का इतिहास जानकर हर

वन के वासी उनसे कुछ न कुछ अलग सीख ले रहे हैं। कहा जाता है कि किसी भी अनुभव से हम क्या सीख लेते हैं, यह उस अनुभव पर कम और हमारी सोच पर अधिक निर्भर करता है। कोई भी अनुभव हमारे उसी प्रश्न का उत्तर दे सकता है, जिसके उत्तर की हम तलाश कर रहे हों। यही बात कहानियों पर भी लागू होती है। यह कोई संयोग नहीं था कि मनुष्यों का पूरा इतिहास जानने के बाद चिन्तामणि जी ने उससे भेद-भाव न करने की सीख ली और कल्पना ने केवल अपने बारे में न सोचने की। वहीं नन्दन ने न जाने कहाँ से स्वयं की आवश्यकताओं को अनदेखा न करने की सीख ढूँढ निकाली।

हमारे वन में कुछ कहावतें बहुत लोकप्रिय हैं। उनमें से एक है "बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद", जिसका अलंकारिक अर्थ यह होता है कि जो बातें हमारे लिए नई या अनोखी होती हैं, उन्हें समझ पाना अक्सर हमारे लिए असंभव होता है। मेरे अनुसार यह कहावत हम सभी पर लागू होती है – जो बातें हमारे बाकी विचारों से मेल नहीं खातीं, हम उन्हें समझकर अपने विचारों का मूल्यांकन करने के बजाए, उन्हें अस्वीकार कर देते हैं। मैंने इस पूरे घटनाक्रम से यह सीखा कि जीवन में हर परिस्थिति को देखने के एक से अधिक तरीके होते हैं, और इनमें से कोई भी तरीका दूसरे से बेहतर या बदतर नहीं होता है। हाँ, हम सदैव उस तरीके से किसी भी परिस्थिति को देखने का प्रयास करते हैं जो हमारे लिए सबसे सरल होता है और हमारे बाकी विचारों से मेल खाता है। अतः यह सोचना कि हमारे विचार ही हर विषय पर सही हैं और दूसरों के गलत, केवल हमारा भ्रम है। यदि हम उन्नति के पथ पर अग्रसर होना चाहते हैं तो हमें प्रयास करना चाहिए कि समय-समय पर अन्य विचारधाराओं को भी सुनें, और अपनी खुद की विचारधारा की निरन्तर समीक्षा करते रहें। स्वयं को समय के साथ बदलते रहने की क्षमता ही हमें निर्जीव वस्तुओं से अलग बनाती है।

इस संसार में कोई कहानियों से जीवन की सीख लेता है, तो कोई स्वयं के अनुभवों से। गौर करने वाली बात यह है कि किसी एक के जीवन का अनुभव ही दूसरों के लिए कहानी बन जाता है। इस घटनाक्रम के बाद मैं भी अपने आस-पास की दुनिया को एक नए दृष्टिकोण से देखने लगा हूँ और जीवन में मित्रता एवं बातचीत के महत्त्व को समझने लगा हूँ। विभिन्न वनों की यात्राओं के दौरान मैं अजनबियों से बातचीत करता हूँ और उनसे कुछ न कुछ नया सीखने का प्रयास करता हूँ। आज वीर वन में भूषण, श्रृंगार वन में जायसी, निर्गुण वन में कबीर, सगुण नदी में तुलसी, रीति वन में देवकी, छाया वन में सुमित्रा और यथार्थ सरोवर में प्रेमचंद की गिनती मैं अपने निकटतम मित्रों में करता हूँ।

हमारे बड़े-बुज़ुर्ग कह गए हैं कि हमें पाप से घृणा करनी चाहिए पापियों से नहीं – अतः मनुष्यों के बारे में इतना कुछ जानने के बाद भी हम उनसे घृणा नहीं करते, केवल उनके तौर-तरीकों की आलोचना करते हैं। हमारी विचित्र वन की यात्रा को अब एक वर्ष से अधिक हो चुका है और इस दौरान हम अनेक वनों में जाकर मनुष्यों के बारे में जानकारी दे चुके हैं। सौभाग्य से मनुष्यों ने अभी तक हम पर आक्रमण नहीं किया है। हमें आशा है कि मनुष्य अपनी पुरानी गलतियों से सीख लेंगे और उन्हें दोहराएँगे नहीं। यदि उनकी विचित्र नदी के दक्षिण में ही रहने की तरकीब कारगर रही, तो शायद उन्हें हम वनवासियों के जीवन में फिर दखल देने की आवश्यकता ही न पड़े। परन्तु, यदि मनुष्य पुनः अपने लोभ को नियंत्रण में रखने में विफल रहते हैं और अपने दुष्प्रभाव से

इस विश्व के अस्तित्व के लिए खतरा बनते हैं, तो इस बार हम सभी जीव-जंतु एकजुट होकर उनसे मुकाबला करेंगे। कहा जाता है कि निरन्तर बदलते हुए संसार के इतिहास में एक बात सदा अपरिवर्तित रही है – शक्तिशाली ने बिना किसी रोक-टोक के हर युग में शक्तिहीन का दमन किया है। हम यह इतिहास बदलने के लिए उत्सुक हैं।

।। पूर्ण-विराम ।।

# धन्यवाद

इस पुस्तक को अपना बहुमूल्य समय देने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। यदि आपको यह कहानी पसंद आई तो अमेज़न (https://www.amazon.in/dp/B0816HPD3V) पर हमें रीव्यू देना व रेट करना न भूलें।